लखनऊ विश्वविद्यालय की बी.ए. प्रथम वर्ष,
हिन्दी साहित्य के द्वितीय प्रश्नपत्र हेतु
निर्धारित पाठ्यपुस्तक

एकांकी संकलन

सम्पादक
प्रो० कालीचरण 'स्नेही'
डॉ० परशुराम पाल

प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ

(लखनऊ विश्वविद्यालय की बी.ए. प्रथम वर्ष, हिन्दी साहित्य के द्वितीय प्रश्नपत्र हेतु स्वीकृत पाठ्यपुस्तक)

एकांकी-संकलन

सम्पादक

डॉ० कालीचरण 'स्नेही'

आचार्य, हिन्दीविभाग

लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

तथा

डॉ० परशुराम पाल

वरिष्ठ प्राध्यापक, हिन्दीविभाग

लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

प्रकाशन केन्द्र

डालीगंज रेलवे क्रॉसिंग, सीतापुर रोड, लखनऊ — 226 020

प्रस्तुत पाठ्य–पुस्तक को समग्रतः या अंशतः – किसी भी रूप में सम्पादक तथा प्रकाशक की अनुमति के बिना छापना वर्जित है। मुद्रणकर्त्ता, प्रकाशक अथवा पुस्तक–विक्रेता किसी भी तरह की क्षति के लिए जिम्मेदार होंगे।

■ **कॉपीराइट** : सम्पादकाधीन

■ **संस्करण** : **2008- 09**

■ **मूल्य** : पैंतीस रुपंये पचास पैसे **(35.50)** मात्र

■ **प्रकाशक** : **प्रकाशन केन्द्र,**
डालीगंज रेलवे क्रॉसिंग,
सीतापुर रोड, लखनऊ – **226 020**
(0522) 2743208, 2743217

प्राक्कथन

एकांकी हिन्दी की समृद्ध विधा है। एकांकी का आशय 'एक अंक' वाला होता है। वस्तुतः इसे एक अंक में सृजित नाटक माना जाता है, पर अपनी प्रवृत्ति से एकांकी, नाटक से भिन्न है। इसका कलेवर नाटक की अपेक्षा लघु होता है। इसमें एक ही मूल सम्वेदना को कथावस्तु के रूप में समृद्ध किया जाता है। आजकल हिन्दी एकांकी अत्यधिक लोकप्रिय विधा के रूप में प्रतिष्ठित है। जयशंकर प्रसाद, डॉ० रामकुमार वर्मा, उदयशंकर भट्ट आदि ने हिन्दी एकांकी के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है।

इस संकलन के अन्तर्गत पाँच एकांकीकारों के एकांकी संगृहीत हैं। डॉ० रामकुमार वर्मा ने एकांकी के सैद्धान्तिक विवेचन एवं व्यावहारिक सृजन द्वारा हिन्दी-एकांकी को ऊँचाई प्रदान की है। "कौमुदी महोत्सव" एकांकी में चन्द्रगुप्त और चाणक्य से सम्बन्धित 'कौमुदी महोत्सव' के प्रसिद्ध ऐतिहासिक प्रसंग को नाटकीय रूप दिया गया है। आधुनिक हिन्दी एकांकी को नयी दिशा देने वाले लेखकों में भुवनेश्वर एक चर्चित नाम है। इनका "स्ट्राइक" एकांकी मध्यवर्गीय समाज का जीता-जागता चित्र उपस्थित करता है। जगदीशचन्द्र माथुर के "रीढ़ की हड्डी" एकांकी में उमा नामक लड़की द्वारा दहेज लोभी पिता-पुत्र की मानसिकता का पर्दाफाश किया गया है। डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल ने पौराणिक, ऐतिहासिक और सामाजिक सभी प्रकार के नाटक लिखे हैं। "मम्मी-ठकुराइन" में सामाजिक समस्या मार्मिक रूप से अभिव्यक्त हुई है। उदयशंकर भट्ट का एकांकी "नये मेहमान" नाट्यकला और रंगमंच की दृष्टि से सफल एकांकी है। भट्ट जी ने अपने नाटकों में विषयवस्तु, समस्या, उद्देश्य आदि को जो प्रधानता दी है, उसका प्रभाव उनके शिल्प पर स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

इस "एकांकी संकलन" में संगृहीत एकांकी – सामाजिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक आदि समस्याओं से सम्बन्धित हैं। प्रस्तुत "एकांकी संकलन" को वस्तु-शिल्प-वैविध्य की दृष्टि से विद्यार्थियों के लिए उपयोगी बनाने का प्रयास किया गया है।

इस संग्रह की भूमिका लिखने का दायित्व प्रो० कालीचरण 'स्नेही' ने निभाया है तथा डॉ० परशुराम पाल ने एकांकीकारों के साहित्यिक अवदान का विवेचन किया है।

प्रस्तुत संकलन को तैयार करने हेतु जिन विद्वानों एवं आलोचकों के ग्रन्थों का उपयोग किया गया है, उन सब के प्रति हमारी ओर से विनम्र आभार। इस संकलन को यथाशीघ्र प्रकाशित करने के लिए प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ के व्यवस्थापक श्री विवेक मालवीय साधुवाद के पात्र हैं।

–प्रो० कालीचरण 'स्नेही'

–डॉ० परशुराम पाल

अनुक्रमणिका

■ **भूमिका** **1 - 20**

हिन्दी एकांकी : उद्भव और विकास 1

एकांकी की परिभाषा और स्वरूप 2

हिन्दी एकांकी का विकास 6

एकांकी की विशेषताएँ 11

एकांकी और नाटक में मौलिक भेद 12

एकांकी और नाटक में साम्य 12

एकांकी के तत्त्व 13

■ **लेखक परिचय** **21 - 34**

डॉ० रामकुमार वर्मा 21

भुवनेश्वर प्रसाद 23

जगदीशचन्द्र माथुर 26

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल 29

उदयशंकर भट्ट 32

■ **संकलित एकांकी** **35 - 130**

कौमुदी महोत्सव *—डॉ० रामकुमार वर्मा* 35

स्ट्राइक *—भुवनेश्वर प्रसाद* 61

रीढ़ की हड्डी *—जगदीशचन्द्र माथुर* 75

मम्मी-ठकुराइन *—डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल* 89

नये मेहमान *—उदयशंकर भट्ट* 117

□□□

भूमिका

हिन्दी एकांकी : उद्‌भव और विकास

एकांकी हिन्दी साहित्य की सुप्रतिष्ठित गद्य विधा है। इसे नाट्य साहित्य के अंग के रूप में पृथक से मान्यता प्राप्त है। इस विधा में रचनाकार जीवन के एक पहलू अथवा उसकी किसी एक घटना को उद्‌घाटित करता है। नाटक में जहाँ किसी व्यक्ति की सम्पूर्ण जीवन–यात्रा का विवरण चित्रित होगा वहीं एकांकी में सम्पूर्ण कथानक की समाप्ति एक ही अंक में हो जाती है।

आधुनिक एकांकी को पाश्चात्य साहित्य की देन माना जाता है। हिन्दी साहित्य कोश (भाग–1) में एकांकी को विवेचित करते हुए कहा गया है कि 'पश्चिम में एकांकी की 'रूपरेखा दशवीं शती के' 'मिरेकिल्स' और 'मारेलिटीज' जैसे नाटक–रूपों में मिलती है, जिनमें धर्म–प्रचारक के लिए ईसाई सन्तों के चरित्र की किसी एक आकर्षक कहानी को चुना गया है या उनके धर्म–कार्य सम्बन्धी नैतिक उपदेश–प्रधान किसी एक विषय को ग्रहण किया गया है। इसके पश्चात् जनता के मनोरंजन के लिए लिखे गए विनोदपूर्ण 'इण्टरल्यूड्स' में इसका विकसित रूप मिलता है, जिनमें अधिक से अधिक तीन पात्रों द्वारा किसी एक भावना के प्रदर्शन की प्रवृत्ति प्रकट हुई है। किन्तु उन्नीसवीं–बीसवीं शती में पेरिस (ई० 1887,1893,1914), बर्लिन (1889), लंदन (1891), डबलिन (1904) शिकागो (1906) आदि नगरों के लघुमंचीय आन्दोलनों (लिटिल थियेटर मूवमेंट) के विकास, प्रीतिभोजों में भोंजन से पूर्व के समय का उपयोग करने के लिए लिखे गए प्रहसनों तथा प्रेक्षागृहों में इन प्रहसनों के प्रारम्भ में प्रेक्षकों के बीच में आ जाने वाली भीड़ के लिए द्विपात्रीय संवादात्मक 'कर्टेनरेजर'

के प्रचलन ने एकांकियों के सर्जन को अभूतपूर्व प्रेरणा दी है। जे० एम० बेरी, जे० बी० शॉ०, लार्ड डनसेनी, हॉप्टमेन, गाल्सवर्दी, इयोजीन ओग्नील, काकमेन सिंज, ग्राह्य, प्रीस्टले, गेटे, लेसिंग, मोलियर, बूयूइ, इब्सन, स्ट्रिण्डवर्ग, आस्कर वाइल्ड' टॉलस्टाय, चेखब, गोर्की, पिरेन्देलो, टी.एस. इलियट, चार्ल्स मार्गन ग्राहमग्रीन, क्रिस्टोफर फ्राइ, लोर्का, क्लाउडेल, जिराउदो, सार्त्र, एनाउल, विलियम्स और 'मिलर' आदि की नाट्य-प्रतिभाओं ने एकांकी का आधुनिक रूप प्रस्तुत किया है, जो आज एक स्वतंत्र शक्तिशाली साहित्य रूप में प्रतिष्ठित हो गया है। हिन्दी साहित्य में भी आधुनिक एकांकी का रूप इसी साम्प्रतिक पश्चिमी रूप के सन्निकट है। अतः संस्कृत नाटक कला के सिद्धांतों के अनुसार उसके स्वरूप का निर्णय नहीं हुआ है।

इस प्रकार स्वरूप के ऐतिहासिक विकास–आवश्यकता और प्रयोग की दृष्टि से स्पष्ट है कि एकांकी नाटक, साहित्य का वह नाट्य–प्रधान रूप है जिसके माध्यम से मानव–जीवन के किसी एक पक्ष, एक चरित्र, एक कार्य, एक परिपार्श्व, एक भाव की ऐसी कलात्मक व्यंजना की जाती है कि ये एक अविकल भाव से अनेक की सहानुभूति और आत्मीयता प्राप्त कर लेते हैं।

कलेवर की दृष्टि से एकांकी एक अंक का नाटक है, किन्तु दृश्य विधान के अनुसार इसके दो भेद किए जा सकते हैं– पहला, एक दृश्य का एकांकी, दूसरा, अनेक दृश्यों का एकांकी। पहली श्रेणी के एकांकी में कथा किसी घटित घटना के मार्मिक स्थल से आरम्भ होती है और भावी घटनाओं के अवरोध से जिज्ञासा तथा कुतूहल की वृद्धि करती हुई तीव्र गति से विस्यमपूर्ण संक्रमण–विन्दु तक पहुँच जाती है। इसमें कथा का प्रवाह उस निर्झर के समान होता है, जो किसी पहाड़ी से अकस्मात् फूटता है, कुछ दूर तक दिखाई देता पड़ता है और शीघ्र ही आँखों से ओझल हो जाता है। इस प्रकार के नाटकों में एक ही स्थान पर, एक ही समय में कार्य समपन्न हो जाता है। स्पष्टतः एकांकी, संस्कृत में रूपकों–उपरूपकों से भिन्न, पाश्चात्य विधा के रूप में ही मान्य है।

एकांकी : परिभाषा और स्वरूप

आधुनिक गद्य विधाओं में एकांकी एक समर्थ विधा के रूप में प्रतिष्ठित है। अपने विकास–क्रम में एकांकी को पश्चिम में बहिष्कार का शिकार भी होना पड़ा क्योंकि पाश्चात्य थिएटरों में जब इन्हें समय की भरपाई के लिए मंचित किया गया तो इनका प्रदर्शन इतना सशक्त बन पड़ा कि दर्शक मूल नाटक को देखा बिना ही वहाँ से चले गए। व्यवस्थापकों ने व्यावसायिक क्षति की सम्भावना से इन 'कर्टेनरेजर' (एकांकियों) का बहिष्कार कर दिया, लेकिन बहिष्कार से निष्प्रभावी रहकर कालान्तर में 'पटउत्थानक' (कर्टेनरेजर) ने अपनी पृथक पहचान बना ली और अन्ततः नाटकों से भिन्न विधा के रूप में प्रचलित हो गए।

1933 तक अंग्रेजी साहित्य में एकांकी नाटकों ने इतनी लोकप्रियता प्राप्त कर ली कि ब्रिटिश ड्रामा लीग और स्काटिश कम्यूनिटी ड्रामा एसोसिएशन ने एक एकांकी प्रतियोगिता आयोजित कर लगभग सात सौ सभा–सोसायटियों में एकांकियों का अभिनय किया। अंग्रेजी तथा यूरोपीय साहित्य में एकांकी अत्यधिक लोकप्रिय विधा के रूप में प्रसिद्ध हो गए।

संस्कृत के एकांकी रूपकों या उपरूपकों से एकांकी सर्वथा भिन्न विधा के रूप में मान्य हैं, किन्तु कतिपय हिन्दी विद्वानों ने इसका उत्स संस्कृत के एकांकी रूपकों से माना है पर यह मान्यता भ्रामक और तथ्यहीन है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में एकांकी नाटकों के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है– "दो एक व्यक्ति अंग्रेजी में एक अंक वाले आधुनिक नाटक देख, उन्हीं के ढंग के दो एक एकांकी नाटक लिखकर उन्हें बिल्कुल नयी चीज कहते हुए सामने लाए। ऐसे लोगों को जान लेना चाहिए कि एक अंक वाले कई उपरूपक हमारे यहाँ बहुत पहले से माने गए हैं। डॉ० सच्चिदानंद राय एवं मान्धाता राय ने शुक्ल जी के उक्त कथन पर 'एकांकी की परिभाषा और उसका स्वरूप' शीर्षक के अन्तर्गत विचार व्यक्त करते हुए लिखा है–'वस्तु एवं शैली की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी एकांकी, संस्कृत एकांकी से सर्वथा भिन्न है।'

हिन्दी एकांकी को परिभाषित करते समय पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानों के मत–अभिमत पर पृथक–पृथक विचार किया जाना चाहिए, क्योंकि

पाश्चात्य विद्वानों ने एकांकी को पश्चिमी विधा के रूप में मान्य किया है; वहीं कुछ भारतीय विद्वानों ने एकांकी का उत्स संस्कृत नाटकों में खोजा है। आइए, सर्वप्रथम पाश्चात्य विद्वानों द्वारा एकांकी को परिभाषित किए जाने पर विचार करते हैं।

पाश्चात्य विद्वान **वाल्टर पिंकर्ट ईटन** ने एकांकी को परिभाषित करते हुए लिखा है कि– "एकांकी की प्रकृति ऐसी होती है कि उसमें नाटककार को किसी विशेष परिस्थिति या घटना का इस प्रकार नियोजन करना पड़ता है कि वह धीरे–धीरे अपने आप विकसित हो जाए।"

अन्य पाश्चात्य विद्वानों की परिभाषाएँ भी हमारा ध्यान आकर्षित करती हैं।

पर्सी व्राइल्ड – "एकांकी नाटक की विशेषता उच्चकोटि की अन्विति एवं मितव्ययता में है। यह अपेक्षाकृत कम समय में अभिनीत होने के लिए होता है और अपनी समग्रता में ग्रहण किए जाने के लिए।"

सिडनी बाक्स– "एकांकी साहित्य की वह विधा है, जिसमें एक ही घटना को इस प्रकार अभिव्यक्त किया जाता है कि उसके प्रभाव ऐक्य से पाठकों का मन आकृष्ट और आक्रान्त हो जाए।"

ए. ई. एम. बेलिरा ने एकांकी में संघर्ष की प्रधानता को अनिवार्य मानते हुए उसे सभी नाटकों का प्राण कहा है।"

भारतीय विद्वानों में हिन्दी के अनेक एकांकीकारों और समालोचकों ने एकांकी को परिभाषित और विश्लेषित किया है। आधुनिक हिन्दी एकांकी के प्रवर्त्तकों में डॉ० रामकुमार वर्मा ने एकांकी के स्वरूप और आशय को 'पृथ्वीराज की आँखें' की भूमिका में लिखा है– 'एकांकी नाटकों में एक ही घटना होती है और यह घटना नाटकीय कौशल में ही कुतूहल का संचार करती हुई चरमसीमा तक पहुँचती है। एक–एक वाक्य और एक–एक शब्द, प्राण की तरह आवश्यक रहते हैं। पात्र, चार या पाँच होते हैं, जिनका नाटकीय घटना से पूर्णतया सम्बन्ध रहता है। वहाँ केवल मनोरंजन के लिए अनावश्यक पात्र की गुंजाइश नहीं रहती

है। प्रत्येक व्यक्ति की रूपरेखा पत्थर पर खिंची हुई, रेखा की भाँति स्पष्ट और गहरी होती है। विस्तार के अभाव में प्रत्येक घटना कली की भाँति खिलकर पुष्प की भाँति विकसित हो उठती है। उसमें लता के समान फैलने की उच्छृंखलता नहीं होती।" डॉ० रामकुमार वर्मा ने एकांकी नाटकों के प्रति अपनी भावना को अभिव्यक्त करते हुए आगे लिखा है कि– "मेरे सामने एकांकी नाटक की भावना वैसी ही है जैसे एक तितली फूल पर बैठकर उड़ जाए, उसकी घटना वस्तु से जीवन मनोरंजन के साथ निखरे रूप में आ जाए, समझने में न तो प्रयास की आवश्यकता हो, न थकावट ही। जीवन का एक पृष्ठ उलट जाए और उसके उलटते हुए आपके मुख पर सन्तोष और सुख हो।"

प्रसिद्ध समालोचक **डॉ० नगेन्द्र** ने एकांकी को परिभाषित करते हुए लिखा है– "स्पष्टतया एकांकी एक अंक में समाप्त होने वाला नाटक है। यद्यपि इसके अंक के विस्तार के लिए कोई नियम नहीं है, फिर भी छोटी कहानी की तरह उसकी एक सीमा है ही, परिधि का यह संकोच कथा–संकोच की ओर इंगित करता है और एकांकी में हमें जीवन का क्रमबद्ध विवेचन न मिलकर उसके एक पहलू, एक महत्त्वपूर्ण घटना, एक विशेष परिस्थिति अथवा एक उदीप्त क्षण का चित्र मिलेगा।"

विष्णु प्रभाकर का कथन है कि–"बड़ा नाटक यदि उपवन के समान है, तो एकांकी स्वतन्त्र रूप से एक गमला है, जिसमें मात्र एक घटना है, कोई अप्रधान प्रसंग नहीं है विषयान्तर नहीं है और घटना बीच में से उठा ली गई है। तीव्रगति कौतूहल, संघर्ष, चरम–सीमा, अभीप्सित प्रभाव अनिवार्य है।"

उदयशंकर भट्ट के शब्दों में– "एकांकी नाटक में जीवन का एक अंश, परिवर्तन का एक–एक क्षण, सब प्रकार के वातावरण से प्रेरित एक झोंका, दिन में एक घण्टे की तरह, मेघ में बिजली की तरह, बसन्त में फूल के हास की तरह व्यक्त होता है।"

सेठ गोविन्ददास के मत में– जीवन संघर्ष के एक महत्त्वपूर्ण पहलू के चित्रण को एकांकी कहा है।

डॉ० दशरथ ओझा एक ही परिस्थिति, एक ही समस्या, कौतूहल, वेग, एकाग्रता, आकस्मिकता, व्यग्रता और प्रभाव की तीव्रता को एकांकी के लिए अनिवार्य मानते हैं।

डॉ० रामचरण महेन्द्र ने एक ही मूल विचार, एक समस्या, एक लक्ष्य और एक ही घटना के नाटकीय सम्प्रेषण को अनिवार्य माना है।

सदगुरुशरण अवस्थी ने एकांकी को परिभाषित करते हुए लिखा है "एकांकी नाटक का एक सुनिश्चित लक्ष्य होता है। इसमें केवल एक ही घटना परिस्थिति अथवा समस्या प्रबल होती है। कार्यकारण की घटनावलि कोई गौण परिस्थिति, समस्या का उसमें कोई स्थान नहीं होता है।"

'उपेन्द्रनाथ अश्क' ने एकांकी के विषय में यह तथ्य उद्घाटित किया है– "बड़े नाटक की तुलना में एकांकी जीवन के एक अंश का पृथक विछिन्न चित्र उपस्थित करता है, जीवन की एक झाँकी मात्र देता है। विभिन्नता के बदले एकीकरण, विशृंखलता के बदले एकाग्रता, पूर्णता के बदले अपूर्णताः, फैलाव के बदले, सिमटाव, विस्तार के बदले संक्षिप्तता इसके गुण हैं।"

डॉ० एस० पी० खत्री के विचार में– "एकांकी की महत्ता इसी में है कि वह केवल एक ही भावना अथवा चित्तवृत्ति का उत्तेजनापूर्ण, विस्मयपूर्ण तथा रोचक प्रदर्शन करे। उसे एकता का बहुत अधिक ध्यान रखना पड़ता है और इस एकता के तत्त्व के द्वारा वह सम्पूर्ण सम्वाद को कथावस्तु के उस महत्त्वपूर्ण स्थल की ओर प्रेरित करता है, जहाँ पहुँचकर पाठक का मन एकदम चमत्कृत हो जाता है। उसे एकांकी की समस्या का स्वरूप स्पष्ट प्रतिभासित हो जाता है और उसकी बुद्धि पर एक विशेष प्रभाव पड़ता है।"

उपर्युक्त पाश्चात्य और भारतीय विद्वानों के पारिभाषिक विवेचनों एवं विश्लेषणों से यह तथ्य उद्घाटित होता है कि एकांकी नाटक एक घटना, एक समस्या, एक कालखण्ड के साथ कौतूहलपूर्ण चमत्कारिक अभिव्यक्ति है। इसमें शब्द–समय और पात्रों के चयन में मितव्ययता अपनायी जाती है। 'तात्त्विक दृष्टि से कहा जा सकता है कि एकांकी में एक घटना, एक समस्या, दो–तीन पात्रों के माध्यम से क्षिप्रगति से कौतूहलपूर्ण शैली में अत्यल्प समय में गुम्फित की जाती है।

एकांकी के कलात्मक पक्ष को प्रभावी बनाने के लिए संकलनत्रय का कठोरता से पालन किया जाता है।

हिन्दी एकांकी का विकास

हिन्दी एकांकी का आरम्भ भारतेन्दु युग से माना जाता है। कतिपय समीक्षक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को हिंदी का प्रथम एकांकीकार मानते हैं। भारतेन्दु के पक्ष में डॉ० सत्येन्द्र, डॉ० रामचरण महेन्द्र, प्रो० ललिताप्रसाद सुकुल आदि माने जाते हैं, जबकि डॉ० नगेन्द्र, डॉ० सद्‌गुरूशरण अवस्थी, डॉ० प्रकाशचन्द्र आदि जयशंकर प्रसाद के 'एक घूँट' को हिन्दी का प्रथम एकांकी मानते हैं। कतिपय विद्वान डॉ० रामकुमार वर्मा को हिन्दी एकांकी का जनक मानते हैं और 'बादल की मृत्यु' को हिन्दी का प्रथम एकांकी मानने के पक्ष में हैं।

कुछ विद्वान भुवनेश्वर को हिन्दी का प्रथम एकांकीकार और 'श्यामा : एक वैवाहिक विडम्बना' को प्रथम एकांकी मानते हैं। अतः हिन्दी विद्वान अभी प्रथम एकांकीकार और प्रथम एकांकी के विषय में एकमत नहीं हैं। मेरी दृष्टि डॉ० रामकुमार वर्मा हिन्दी के प्रथम एकांकीकार और उनका 'बादल की मृत्यु' हिन्दी का प्रथम एकांकी माना जाना चाहिए।

भारतीय विद्वानों ने हिन्दी एकांकी के विकास–क्रम को मुख्य रूप से चार सोपानों में विभक्त किया है–

(1) भारतेन्दुयुगीन एकांकी,

(2) द्विवेदीयुगीन एकांकी,

(3) प्रसादयुगीन एकांकी,

(4) प्रसादोत्तर या स्वातन्त्र्योत्तरयुगीन एकांकी।

भारतेन्दुयुगीन एकांकी

हिन्दी एकांकी का प्रथम विकास–काल या प्रयोग काल, भारतेन्दु युग माना जाता है। इस युग के एकांकी, मुख्यतः संस्कृत के रूपकों–उपरूपकों के आधार पर लिखे गए। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने एकांकी के क्षेत्र में कई प्रयोग किए। उन्होंने अनेक मौलिक तथा अनूदित रचनाएँ हिन्दी साहित्य को दीं। इनमें 'भारत जननी, धनंजय विजय, वैदिक हिंसा–हिंसा न भवति, पाखण्ड विडम्बन, भारत दुर्दशा, अन्धेर नगरी, विषस्य विषमौषधम एवं नील देवी, आदि उल्लेखनीय हैं। इस युग में पं० प्रतापनारायण मिश्र ने कलिकौतिक, तथा जुआरी खुआरी,

बालकृष्ण भट्ट ने 'कलिराज की सभा', रेल का विकट खेल, बाल विवाह, बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन, ने 'प्रयागरामागमन', राधाकृष्ण दास ने 'धर्मालाप, 'दु:खिनी बाला', राधाचरण गोस्वामी ने 'श्रीदामा, सती चन्द्रावली, भंगतरंग, किशोरीदास गोस्वामी ने' 'चौपट चपेट' आदि रचनाएँ प्रस्तुत कीं । उक्त रचनाकारों ने अपने एकांकियों में राष्ट्रीय भावना, पौराणिकता, सामाजिकता, ऐतिहासिकता के साथ-साथ हास्य-व्यंग्य को विषयवस्तु के रूप में प्रस्तुत किया। इन रचनाओं में एकांकी के सैद्धातिक तत्त्वों आदि का निर्वाह नहीं हुआ है तथापि हिन्दी एकांकी के आरम्भिक स्वरूप और विकास का विवरण अवश्य मिलता है।

द्विवेदी युगीन एकांकी-

इस युग में हिन्दी एकांकियों पर पश्चिमी प्रभाव पड़ा। समाजसुधार, देशप्रेम, राष्ट्र की उन्नति के लिए समर्पण आदि को एकांकी की कथावस्तु बनाया गया। इस युग के प्रमुख एकांकीकारों में मंगलाप्रसाद विश्वकर्मा, सियाराम शरण, ब्रजलालशास्त्री, बदरी नारायण भट्ट, रूपनारायण पाण्डेय, पाण्डेय बेचन शर्मा, 'उग्र', श्री सुदर्शन आदि प्रमुख हैं। मंगला प्रसाद विश्वकर्मा का 'शेर सिंह', ब्रजलाल शास्त्री का, 'नीला', दुर्गावती', सियारामशरण का 'कृषण', रूपनारायण पाण्डेय का 'मूर्ख मण्डली' और उग्र जी का चार बेचारे' चर्चित एकांकी हैं।

प्रसाद युगीन एकांकी

हिन्दी एकांकी का वास्तविक सूत्रपात जयशंकर प्रसाद के समय से ही माना जाता है। इस युग के एकांकीकारों ने जनता में राष्ट्रीय चेतना के साथ-साथ सामाजिक, पारिवारिक, वैयक्तिक एवं धार्मिक पक्ष को नवीन सन्दर्भों में अभिव्यक्ति प्रदान की। प्रसाद ने 'एक घूँट', शीर्षक से एक समस्या-प्रधान एकांकी की रचना की। इस एकांकी में स्वछन्द प्रेम का भावपूर्ण चित्रण किया है। कुछ हिन्दी आलोचक इस एकांकी को हिन्दी की पहली मौलिक कृति मानते हैं। प्रसादयुगीन रचनाकरों में कामताप्रसाद गुरु, जी.पी. श्रीवास्तव, रामनरेश त्रिपाठी, पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र, बदरीनारायण भट्ट सूर्यकिरण पारीक तथा चन्द्रगुप्त विद्यालंकार आदि की गणना की जाती है। प्रसादयुगीन नाटकों और

एकांकियों के विषय में कहा जाता है कि वे मंच पर अभिनीत हो पाने की अपेक्षा–पठन–पाठन तक सीमित रहे। साहित्यिक दृष्टि से इस युग के एकांकी उच्चकोटि के माने जाते हैं।

डॉ० नगेन्द्र द्वारा सम्पादित 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में 'छायावाद' युग को एकांकी लेखन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है। एकांकी नाटकों पर विचार करते हुए उक्त इतिहास–ग्रन्थ में उल्लेख है कि – 1936 ई० में दिल्ली में और 1938 ई० में लखनऊ में आकाशवाणी के अस्तित्व में आने के फलस्वरूप पहले उर्दू–लेखकों और 1940 ई० के लगभग हिन्दी लेखकों को भी रेडियो पर एकांकियों के प्रसारण का अवसर प्राप्त हुआ। इसके पूर्व 'हंस' के 'एकांकी नाटक विशेषांक' (मई 1938) को लेकर एकांकी के सम्बन्ध में अच्छा खासा विवाद उठ खड़ा हुआ था। इसमें हिन्दी के आठ एकांकी प्रकाशित हुए थे। इसी अंक में चन्द्रगुप्त 'विद्यालंकार' का एक विस्तृत पत्र प्रकाशित हुआ जिसमें उन्होंने साहित्य में एकांकी नाटक का कोई स्थान स्वीकार नहीं किया. ......मेरी स्थापना यह है कि एकांकी नाटक की कोई निश्चित और निजी (जो और किसी की न हो) टेक्नीक न तो अभी तक बन पायी है और न बन सकती है।" इसी अंक में उपेन्द्रनाथ अश्क ने एकांकी को नाटक, कहानी और संभाषण से पृथक एक स्वतन्त्र विधा के रूप में स्वीकृति दी। किन्तु जैनेन्द्र ने इसके विरुद्ध अपना मन्तव्य व्यक्त करते हुए लिखा– "भारत में एकांकी परिस्थितियों की सहज उपज़ नहीं है– विलायत वाले अपनी जानें। उनके हालात यहाँ से जुदा हैं।....... किसी बाह्य रूप को जब तक वह अन्तःप्रेरित न हो, खींच लाने का आग्रह जरूरी नहीं है।" इसे उन्होंने अनुसरण के रूप में ओढ़ा हुआ बताया, जबकि 'हंस' के सम्पादक ने उनकी बातों का खण्डन किया। 1940 ई० में इस विवाद को 'वीणा' में पुनः उठाया गया, जिससे स्पष्ट है कि तब तक हिन्दी–एकांकी अपने अस्तित्व के लिए ही संघर्ष करता रहा था। किन्तु इसके बाद उसे स्वतंत्र साहित्यिक विद्या के रूप में स्वीकार कर लिया गया।

यह उल्लेखनीय है कि भुवनेश्वर, रामकुमार वर्मा, उदयशंकर भट्ट, अश्क, सेठ गोविन्ददास, जगदीशचन्द्र माथुर आदि एकांकी लेखन का सभारम्भ प्रायः 1935-36 के लगभग कर चुके थे, पर इनमें से अधिकांश के मुख्य

एकांकी–संकलन 1940 ई० के बाद ही प्रकाशित हुए। उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'प्रसाद युग', एकांकी के समारंभ की पृष्ठभूमि तैयार करता है। इस युग के चर्चित एकांकियों में पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का 'क्रान्ति के पंजे', बदरीनारायण भट्ट का 'चुंगी की उम्मीदवारी' तथा 'विवाह विज्ञापन', हरिशंकर शर्मा का 'स्वर्ग की सीधी सीढ़ी' प्रमुख है।

प्रसादोत्तर या स्वातन्त्र्योत्तर युगीन एकांकी

हिन्दी एकांकी के अभ्युदय के बाद प्रसादोत्तर युग में एकांकी का वर्तमान स्वरूप स्थिर हुआ। कतिपय आलोचक हिन्दी एकांकी का वास्तविक आरंभ इसी युग में मानते हैं। विषयवस्तु और भाषा–शिल्प आदि की दृष्टि से डॉ० रामकुमार वर्मा द्वारा लिखित एकांकी 'बादल की मृत्यु 1930 ई० में प्रकाशित हुआ। उन्होंने शताधिक एकांकियों की रचना की थी। भुवनेश्वर प्रसाद तथा लक्ष्मीनारायण मिश्र जैसे सशक्त एकांकीकार इसी युग में परिगणित हैं। यह काल एकांकी लेखन की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस युग के एकांकीकारों ने पारम्परिक विषयों के साथ–साथ नवीन और मौलिक एकांकी लिखे।

प्रसादोत्तर–युगीन एकांकीकारों में डॉ० रामकुमार वर्मा का नाम उल्लेखनीय है। 'पृथ्वीराज की आँखें', 'रेशमी टाई', 'चारुमित्रा', 'कौमुदी महोत्सव', 'दीपदान', 'इन्द्र धनुष', तथा, 'सप्तकिरण' आदि एकांकी प्रमुख हैं।

अन्य महत्त्वपूर्ण एकांकियों में सेठ गोविन्ददास कृत जाति उत्थान,' बाजीराव की तस्वीर, शिवाजी का सच्चा स्वरूप, लक्ष्मीनारायण मिश्र का 'भगवान मनु तथा अन्य एकांकी' शीर्षक संग्रह आदर्शपरक एवं राष्ट्रीयता से ओत–प्रोत हैं।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का 'लक्ष्मी का स्वागत', 'अधिकार का रक्षक', 'सूखी डाली', जोंक आदि तथा भुवनेश्वर प्रसाद का 'श्यामा', 'शैतान', 'लाटरी', 'कारवाँ', उदयशंकर भट्ट का 'स्त्री का हृदय' आदिमयुग, 'समस्या का अन्त', चतुरसेन शास्त्री का 'लोहे का भय, विधवासिंहनी, वीरवधू, पन्नाधाय, भगवतीचरण वर्मा का 'सबसे बड़ा आदमी,' 'चौपाल में', जगदीशचन्द्र माथुर का 'भोर का तारा', रीढ़ की हड्डी', घोंसले, 'मेरे सपने', गिरिजाकुमार माथुर का 'पिकनिक', 'बारात चढ़े', 'राम की 'अग्निपरीक्षा' आदि प्रमुख हैं।

स्वतंत्रता के पश्चात् रडियो तथा टेलीविजन के माध्यम से हिन्दी एकांकी साहित्य की लोकप्रिय विधा बन गई। नाटकों से अधिक, एकांकियों ने अपना प्रभाव पाठकों पर डाला। विष्णु प्रभाकर डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल, भारतभूषण अग्रवाल, धर्मवीर भारती, प्रभाकर माचवे, श्रीमती विमला लूथरा, विनोद रस्तोगी आदि ने एकांकी और रेडियो रूपक के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। सम्प्रति, हिन्दी एकांकी, लोकप्रियता के शिखर पर हैं। कुछ प्रसिद्ध एकांकियों का उल्लेख निम्नवत् है–

विनोद रस्तोगी	:	पाप और पुण्य, सोना और मिट्टी, आजादी के बाद, आकाश पाताल।
उदयशंकर भट्ट	:	एक ही कब्र में, दुर्गा, नेता, स्त्रीहृदय, वापसी, सेठ लाभचन्द्र।
सेठ गोविन्ददास	:	बुद्ध की एक शिष्या, परमहंस का पत्नी प्रेम, नानक की नमाज, हंगर स्ट्राइक, सच्चा कांग्रेसी कौन, कृषि यज्ञ।
मोहन राकेश	:	अण्डे के छिलके, प्यालियाँ टूटती हैं, सिपाही की माँ, रिहर्सल।
धर्मवीर भारती	:	आवाज का नीलाम, नदी प्यासी थी, सृष्टि का आखिरी आदमी।
सत्येन्द्र भारत	:	तार के खम्भे, मौत के कुएँ, उषा की मुस्कान।
विष्णु प्रभाकर	:	ममता का विष, उपचेतना का छल, दूर और पास, किरण और कुहासा, पाप, साहस, बन्धनमुक्त।
लक्ष्मीनारायण लाल	:	पर्वत के पीछे, कैद के पहले, ताजमहल के आँसू, शरणागत।
लक्ष्मीनाराण मिश्र	:	अशोक वन, एकदिन, नारी का रंग, कावेरी में कमल, स्वर्ग में विप्लव, भगवान मनु।
जगदीशचन्द्र माथुर	:	मेरी बाँसुरी, भोर का तारा, रीढ़ की हड्डी', 'खण्डहर', बन्दी।
श्रीमती विमला लूथरा	:	आठवाँ आश्चर्य, पेड़ों की छाया, प्रीतिभोज,

गोविन्दलाल माथुर : ठाकुर शाही की एक झलक।
यादवेन्द्रनाथ शर्मा 'चन्द्र' एक दिन की बात।
गणेशदत्त गौड़ 'इन्दु' : कला का परिष्कार।
कणाद ऋषि भटनागर : माया, एकांकी संग्रह।

हिन्दी एकांकी के विकास में रेडियो और टेलीविजन माध्यमों ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। एकांकी के प्रायः सभी भेदोपभेद यथा–ध्वनिरूपक, रेडियो प्रहसन, संगीत रूपक, मोनोलॉग, झलकी, स्वगत नाट्य, गीतिनाट्य, फैन्टेसी, फीचर, ओपेरा, छाया एकांकी, आदि बहुत ही लोकप्रिय हो रहे हैं। सामाजिक समस्याओं के साथ–साथ यथार्थवादी और मनोवैज्ञानिक आधारभूमि पर भी एकांकियों का सृजन जारी है। रंगमंचीय आकर्षण, संगीतात्मकता और भावप्रवणता के कारण एकांकियों ने प्रेक्षक और पाठकों पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ा है। एकांकी के प्रति साहित्यकारों और पाठकों का यही रुझान रहा तो एक दिन हिन्दी साहित्य की मुख्य विधा के रूप में लोकप्रियता अर्जित करेंगे। एकांकी विधा को जिन साहित्यकारों ने अपनाया है, उनके स्तुत्य प्रयास से इसका वर्तमान समृद्ध और भविष्य उज्ज्वल प्रतीत होता है।

एकांकी की विशेषताएँ

1. एकांकी दृश्यकाव्य की एक ऐसी विधा है, जिसमें एक अंक, एक समस्या, अथवा जीवन के किसी एक महत्त्वपूर्ण पहलू का दृश्यांकन होता है।
2. संघर्ष, एकांकी का प्राण है। अतः चमत्कृत शैली में संघर्ष का चित्रण किया जाता है। यह दो विरोधी पात्रों या वर्गों के बीच का संघर्ष होता है।
3. पात्र संख्या कम होती है।
4. एंकाकी में आदर्श के साथ–साथ यथार्थ का भी उचित समन्वय होता है।
5. संकलनत्रय का पालन आवश्यक है।
6. एकांकीका अन्त चमत्कारिक ढंग से होता है। रहस्योद्घाटन भी अन्त में ही होता है।
7. दृश्य विधान के लिए उचित एवं सार्थक रंग–संकेतों का संयोजन होता है।

एकांकी और नाटक में मौलिक भेद

1. एकांकी में जीवन के एक रूप, एक अंश, एक परिस्थिति अथवा एक घटना का वर्णन होता है, जबकि नाटक में किसी व्यक्ति की विस्तृत कथा को प्रस्तुत किया जाता है।
2. एकांकी में प्रासंगिक कथावस्तु न होकर मात्र एक ही आधिकारिक कथावस्तु होती है, किन्तु नाटक में आधिकारिक कथावस्तु के साथ–साथ प्रासंगिक कथावस्तु की भी योजना होती है।
3. एकांकी में दो–तीन पात्रों के माध्यम से ही कथावस्तु को उपसंहार तक ले जाया जाता है, जबकि नाटक में पात्र संख्या अधिक होती है।
4. एकांकी में मात्र एक अंक होता है, जबकि नाटक में कथावस्तु के अनुसार कई अंक होते हैं।

एकांकी और नाटक में साम्य

1. एकांकी और नाटक, दृश्यकाव्य के अन्तर्गत आते हैं।
2. दोनों ही रंगमंच अथवा रंगमण्डप के बिना प्रस्तुत नहीं किए जा सकते अर्थात् इनकी प्रस्तुति हेतु रंगमंच अथवा रंगमण्डप की अपेक्षा की जाती है।
3. नाटक और एकांकी, दोनों का लक्ष्य जनरंजन होता है।
4. नाटक और एकांकी की मुख्य कथावस्तु या इतिवृत्त को कौतूहल का रूप दिया जाता है।
5. दोनों विधाओं की आधारभूत कथावस्तु के लिए पात्रों का होना अनिवार्य है।

उपर्युक्त साम्य या सादृश्य के बाद भी एकांकी की अपनी स्वतंत्र टेकनीक और शैली होती है। एकांकी प्रभाव की दृष्टि से अत्यन्त सशक्त विधा मानी जाती है।

एकांकी के तत्त्व

एकांकी के मुख्यरूप से तीन तत्त्व स्वीकार किए जाते हैं–

(1) कथावस्तु, (2) संवाद, (3) रंग–निर्देश।

तत्त्व, कथावस्तु निर्माण के आवश्यक घटक होते हैं, इनके अभाव में कथावस्तु या एकांकी कलेवर की प्रतिष्ठा संभव नहीं है।

डॉ० रामचरण महेन्द्र ने एकांकी के आठ तत्त्व मान्य किए हैं–

(1) कथावस्तु, (2) संघर्ष या द्वन्द्व,
(3) संकलन–त्रय, (4) पात्र और चरित्र–चित्रण,
(5) कथोपकथन, (6) अभिनयशीलता,
(7) रंगमंच निर्देश, (8) प्रभाव ऐक्य।

डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त के अनुसार एकांकी के सात तत्त्व हैं–

(1) कथावस्तु (2) पात्र
(3) कथोपकथन (4) देशकाल
(5) शैली (6) उद्देश्य (विचार)
(7) भावना।

सामान्यतः विद्वानों ने एकांकी के छः तत्त्वों को मान्यता दी है– जिसका संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत है–

(1) कथावस्तु : कथानक या कथावस्तु, एकांकी का आधारतत्त्व है, इसके अभाव में एकांकी के कलेवर की कल्पना नहीं की जा सकती। कथावस्तु का चुनाव, एकांकीकार अपनी अन्तःप्रेरणा से करता है। यह तीन मुख्य सोपानों में विकसित होती है– यथा, आरंभ–विकास, चरमोत्कर्ष और परिणति या उपसंहार। कुछ समालोचक द्वन्द्व या संघर्ष को भी एक सोपान मानते हैं ई. एम. फॉस्टर के शब्दों में– "कथानक घटनाओं का कालक्रमानुसार वर्णन है, जिसमें कारण–कार्य सम्बन्ध पर विशेष जोर रहता है।"

डॉ० सिद्धनाथ कुमार ने कथानक के सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है– "लेखकीय उद्देश्य को अभिव्यक्त करने वाले द्वन्द्वयुक्त एवं कौतूहलपूर्ण घटनाक्रम और पात्र संयोजन को कथानक कहते हैं।"

कथावस्तु के संयोजन में 'संकलनत्रय' का अनिवार्यतः पालन किया जाता है। इसमें 'यूनिटी ऑफ एक्शन टाइम एण्ड प्लेस' का ध्यान रखा जाता है। सेठ गोविन्ददास ने काल और कार्य की अन्विति या एकता को एकांकी की सफलता के लिए आवश्यक माना है। डॉ० रामकुमार वर्मा ने एकांकी की सफलता, संकलनत्रय के सफल निर्वाह में ही मानी है

निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि एकांकी की सुसगठित कथावस्तु ही पाठकों या दर्शकों पर अपना प्रभाव छोड़ सकती है। रोचकता और संक्षिप्तता ही कथावस्तु को श्रेष्ठत्व प्रदान करती है।

(2) पात्र या चरित्र–चित्रण— कथावस्तु के कार्य–व्यापार को गति प्रदान करने के लिए पात्रों का होना अनिवार्य है। डॉ० श्यामसुन्दर शुक्ल ने किसी कथात्मक कृति में वस्तु–तत्त्व को गंतव्य तक ले जाने का कार्य, पात्रों के द्वारा ही संभव माना है। डॉ० रामकुमार वर्मा के अनुसार पात्रों की संख्या चार–पाँच से अधिक नहीं होनी चाहिए। पात्राधिक्य से अभिनय आदि में व्यवधान उत्पन्न होता है। डॉ० श्यामसुन्दर शुक्ल के शब्दों में– "समस्त घटना–व्यापार के संचालक और शुभाशुभ– परिणाम के भोक्ता केन्द्रीय व्यक्ति को मुख्य पात्र कहा जाता है और उसकी उद्देश्यपूर्ति में सहायक अन्य पात्रों को गौण पात्र। इन पात्रों को यथार्थ की भूमि पर स्वाभाविकता के साथ उपस्थित करना और उन्हें निज का व्यक्तित्व देना एकांकीकार के लिए बहुत बड़ी चुनौती है, क्योंकि किसी पात्र को जीवन्तता तभी मिल पाती है, जबकि वह अपने पैरों पर खड़ा हो सके, अपने विवेक से निर्णय लेकर उसे क्रियान्वित कर सके। रचनाकार की वैसाखी पर चलने वाले पात्र कभी श्रेष्ठ कलाकृति को जन्म नहीं दे सकते। एतदर्थ एकांकीकार के पास जीवन का विशद अनुभव और मानवीय प्रकृति का अच्छा ज्ञान होना चाहिए।"

डॉ० रामकुमार वर्मा, उदयशंकर भट्ट, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', आदि के एकांकी पात्र, संजीवता लिए हुए हैं। डॉ० एस० पी० खत्री के शब्दों में– "जितना ही लेखक का निरीक्षण तीव्र होगा, जितनी ही उसकी आँखें मँजी हुई होंगी, जितना ही उसका अनुभव व्यापक होगा, उतना ही चरित्र–चित्रण प्रभावपूर्ण होगा।"

एकांकी में मुख्य पात्र, एक ही होता है, शेष अन्य गौण पात्र, प्रमुख पात्र के चरित्र को विकसित करने वाले होते हैं। 'वापसी' एकांकी का 'असगर' हमारी स्मृति से कभी ओझल नहीं हो सकता है।

(3) संवाद या कथोपकथन— आचार्य भरत मुनि ने संवाद को नाटक का अनिवार्य तत्त्व माना है। एकांकियों में भी संवाद योजना को आत्मतत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है। संवाद के माध्यम से ही कथावस्तु का विस्तार संभव हो पाता है। छोटे–छोटे कथन या संवाद, एकांकी को प्रभावोत्पादक बनाते हैं। डॉ० रामकुमार वर्मा ने 'संवाद' को 'आत्मा' कहा है। श्यामसुन्दर शुक्ल ने माना

है कि– "जिस प्रकार वाणीविहीन मनुष्य मूक हो जाता है, उसी प्रकार संवादविहीन एकांकी को भी मूक कहा जा सकता है– क्षिप्रता, संक्षिप्तता, स्वाभाविकता, रोचकता, संजीवता, नाटकीयता, मार्मिकता और प्रभावात्मकता, अच्छे संवाद के प्रमुख लक्षण हैं।" अतः एकांकी में संवाद योजना या कथोपकथन अत्यन्त सारगर्भित, सुगठित और सजीव होने चाहिए।

(4) देशकाल और वातावरण– नाटक या एकांकी में देशकाल और वातावरण को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया है। कोई भी घटना किसी देशकाल और परिस्थिति में घटित होती है, इसी के आधार पर कथावस्तु एवं पात्रादि निर्मित होते हैं। ऐतिहासिक–पौराणिक एकांकियों में देशकाल और वातावरण पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

हिन्दी समीक्षकों की राय में एकांकीकार को चाहिए कि वह पात्रों के जिन कार्यव्यापारों का चित्रण करना है, वे समय सीमा का अतिक्रमण करते न दिखें। डॉ० सभापति मिश्र और डॉ० शिवसेवक सिंह ने स्वीकार किया है कि "रचनाकार की यह अनिवार्यता है कि उसके द्वारा वर्णित कथा के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का वह यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करे। उसे इसमें सामाजिक रीति–रिवाज, रहन–सहन, व्यक्तिगत वेशभूषा और स्थानीय वैशिष्ट्यों पर विशेष रूप से सूक्ष्म दृष्टि रखनी पड़ती है। इस कार्य–व्यापार के माध्यम से वह एकांकी के कथानक को विश्वसनीय, रोचक एवं सहज बनाता हैं। दृश्य योजना एवं संवाद शैली को देशकाल के अनुरूप विन्यस्त करने पर ही एकांकीकार की सफलता निर्भर करती है। उसे जातीय व सामाजिक जीवन की गहरी समझ होनी चाहिए। इसी के द्वारा वह कथा एवं पात्रों के अनुकूल पूजा प्रणाली, अभिवादन शैली, उत्सव प्रद्धति आदि को पुर्नरचित करने का सामर्थ्य, अर्जित करता है।"

देशकाल एवं संकलनत्रय, 'एकांकी में आरम्भ से अन्त तक समाविष्ट रहता है। संकलनत्रय के नियोजन बिना एकांकी की स्वाभाविक सृष्टिं संभव ही नहीं है। रंगमंचीय साज–सज्जा आदि का भी नियोजन देशकालानुसार नियोजित करना अनिवार्य है।

(5) **भाषा शैली**— एकांकी की भाषा, साहित्यिक एवं सुबोध होनी चाहिए। दुर्बोधता, जटिलता और कर्णकटुता से बचाव आवश्यक है। पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग एकांकी को प्रभावपूर्ण बना सकते हैं। डॉ० श्यामसुन्दर शुक्ल के शब्दों में— "एकांकीकार को पात्र के कुल–शील व्यक्तित्व के अनुरूप भाषिक प्रयोग की साधना करनी पड़ती है। भाषा के साथ जब पात्र का व्यक्तित्व जुड़ जाता है, तब उसकी अलग पहचान बन जाती है। इसीलिए पात्र के व्यक्तित्व, परिवेश और परिस्थिति के अनुसार भाषा का प्रयोग एकांकी की सफलता के लिए आवश्यक है। एकांकी जैसी जनप्रिय विधा के लिए अलंकारिक भाषा का प्रयोग वर्जित है। ऐसी भाषा से काव्य का पूरी तरह सम्प्रेषण नहीं हो पाता। यथार्थ की पूरी पकड़ के लिए सदैव सीधी, सरल भाषा ही उपयोगी होती है।" पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग अपेक्षित ही नहीं, अनिवार्य होता है।

(6) **उद्देश्य**— संसार की प्रत्येक कृति सोद्देश्यता लिए हुए होती है। साहित्यकार और कलाकार भी अपनी सृष्टि का सृजन करते वक्त उद्देश्य को ध्यान में रखता है। उद्देश्यहीन कृति का कोई मूल्य नहीं होता है। निरुद्देश्य सृजन, कभी किसी को भी आकर्षित नहीं कर सकता। जीवन की सोद्देश्यता को सभी स्वीकार करते हैं, इसी तरह साहित्य–सृजन भी सोद्देश्यता लिए हुए होता है। डॉ० श्यामसुन्दर शुक्ल ने स्वीकार किया है कि— "एकांकी क्या ? दुनिया की कोई भी वस्तु हमारे लिए तभी तक अर्थवत्ता रखती है, जब तक वह हमारे जीवन से विधेयात्मक रूप से जुड़ी हो। अतः एकांकी रचना का कोई न कोई आदर्श अथवा यथार्थमूलक उद्देश्य होना ही चाहिए। आज के युग में एकांकी नाटक, सामाजिक परिवर्तन के औजार रूप में स्वीकार किया गया है। वह चूँकि आँख और कान, दोनों ही स्तरों पर अपनी कारगर भूमिका के साथ आता है, इसलिए उसने न केवल जीवन की जड़ता पर चोट की है, बल्कि जीवन की विकृतियों को हमारे सामने पसारकर रखने के साथ ही अनेक आदर्शमूलक समाधान का रास्ता भी ढूँढ़ा है।"

यहाँ यह सजगता भी आवश्यक है कि उद्देश्य का स्पष्ट उल्लेख न हो. अन्यथा रचना की उत्कृष्टता पर आँच आ सकती है। डॉ० सभापति मिश्र और डॉ० शिवसेवक सिंह के विचार में उद्देश्य का परोक्ष विधान ही अपेक्षित है। उनका कथन है कि – "एकांकीकार, उद्देश्य का स्पष्ट उल्लेख तो नहीं करता, लेकिन

उसके स्वर की अनुगूँज किसी न किसी रूप में एकांकी में आदि से अन्त तक विद्यमान रहती है। एकांकीकार को इस दिशा में पूर्ण सजग रहना चाहिए कि उद्देश्य तत्त्व, कथावस्तु के विकास के अनिवार्य एवं तर्कसम्मत परिणाम के रूप में समक्ष आवे। वह ऊपर से थोपा हुआ न प्रतीत हो। उद्देश्य का स्पष्ट उल्लेख रचना की उत्कृष्टता एवं कलात्मकता में बाधक सिद्ध होता है। कालजयी रचना होने के लिए एकांकी को सोद्देश्य एवं कलात्मक होना चाहिए। "श्रेष्ठ एकांकीकारों ने अपने पात्रों के माध्यम से उद्देश्य की प्राप्ति परोक्षतः प्राप्त की है। पात्रों के संवाद पूरी अर्थवत्ता के साथ एकांकी के उद्देश्य की अनुभूति प्रेक्षक या श्रोता को कराने में सफल हो जाते हैं। 'सूखी डाली', 'दीपदान' और 'वापसी' एकांकी अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल रहे हैं।

हिन्दी के कुछ समर्थ आलोचकों ने एकांकी के अन्य तत्त्वों में 'रंगसंकेत और अभिनेयता' को भी स्वीकार किया है। यह बात सही है कि 'रंगसंकेत' और अभिनेयता' की गणना एकांकी के तत्त्वों में पृथक से नहीं की गयी है, किन्तु एकांकी और नाटकों में इस तत्त्व की अनिवार्यता भी सर्वस्वीकृत है। 'हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार– "रंगभूमि की व्यवस्था और पात्रों की आयु, वेश–भूषा या निर्देश, कथा के जटिल प्रसंगों की व्याख्या, पात्रों के मानवीय द्वन्द्वों की व्यंजना तथा उनके भावों–विचारों को संप्रेक्षणीय और अभिनयात्मक बनाने के उपाय तथा कथा में प्रयुक्त होने वाले भाव और वस्तु के प्रतीकों का स्पष्टीकरण रंगसंकेतों द्वारा ही किया जाता है।" अभिनय आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक होता है। रंगमंच और रंगनिर्देश के अभाव में एकांकी के प्रस्तुतीकरण या अभिनय में असुविधा तो होती है, उसकी सफलता भी संदिग्ध हो जाती है। अतः रंगनिर्देश, ही एकांकी और नाटकों को रोचक एवं लोकप्रिय बनाते हैं। रंगनिर्देश आधुनिक एकांकी का अनिवार्य सहायक तत्त्व है। सम्प्रति, श्रेष्ठ एकांकीकार, रंगनिर्देशन को आवश्यक मानकर उनका नियोजन अनिवार्यतः करता ही है।

एकांकी के भेद– हिन्दी एकांकियों के अनेक भेद–उपभेदों को स्वीकार किया गया है। कुछ समीक्षकों ने इनका विभाजन निम्नलिखित आधारों पर किया है–

(क) मूलप्रवृत्ति
(ख) विषयवस्तु।
(ग) रचना–प्रकार
(घ) अभिनेयता
(ङ) सन्देश।

डॉ० सत्येन्द्र ने मूलप्रवृत्तियों के आधार पर एकांकी के आठ भेद माने हैं–

(1) आलोचक एकांकी– जो मानव जीवन की त्रुटियों की आलोचना करते हैं।

(2) विवेकवान एकांकी– जिसमें वाद–विवद द्वारा आलोचना–प्रत्यालोचना की जाती है।

(3) भावुक एकांकी– इनमें भावुकता की प्रधानता होती है।

(4) समस्या एकांकी– विविध समस्याओं को कथावस्तु का आधार बनाया जाता है।

(5) अनुभूतिमय एकांकी– किन्हीं विशिष्ट जीवनानुभूतियों को आधार बनाया जाता है।

(6) व्याख्यामूलक एकांकी– यह एकांकी व्याख्यात्मक होते हैं।

(7) आदर्शमूलक एकांकी– इन एकांकियों के माध्यम से विशिष्ट आदर्श की प्रतिष्ठा की जाती है।

(8) प्रगतिवादी एकांकी– प्रगतिशील प्रवृत्तियों को आधार बनाकर लिखे गये एकांकी इस श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं।

विषयवस्तु के आधार पर एकांकी के भेद :

(1) सामाजिक एकांकी, (2) पौराणिक एकांकी,
(3) ऐतिहासिक एकांकी, (4) राजनीतिक एकांकी,
(5) साहित्यिक एकांकी।

डॉ० रामचरण महेन्द्र ने एकांकी की नवीन तकनीक को आधार बनाकर नौ भेद किए हैं–

(1) सुखान्त एकांकी, (2) दुखान्त एकांकी,
(3) प्रहसन, (4) फैंटेसी,
(5) गीत नाट्य, (6) झाँकी,
(7) संवाद या संभाषण, (8) मोनोड्रामा या ओपेरा,
(9) रेडियो–प्ले।

एकांकियों के कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं—

(1)	विवेकवान एकांकी—	जैनेन्द्रजी का 'टकराहट'।
(2)	अनुभूतिपरक एकांकी—	प्रसाद जी का 'एक घूँट'।
(3)	आदर्शमूलक एकांकी—	'कुणाल'।
(4)	स्किट—	राजाराम शास्त्री का एकांकी संग्रह-'डमरूनाथ'।
(5)	फैन्टेसी—	डॉ० रामकुमार वर्मा का 'बादल की मृत्यु' और धर्मवीर भारती का' नीली झील।
(6)	रेडियो एकांकी—	डॉ० रामकुमार वर्मा का 'चारुमित्रा', विष्णुप्रभाकर का 'उपचेतना का फल'।
(7)	फीचर—	दिल्ली की दीवाली।
(8)	छाया एकांकी—	ऐसे एकांकियों में रंगमंच के साथ–साथ छाया का भी उपयोग होता है।
(9)	गीतिनाट्य—	पद्यात्मक संवाद वाले एकांकी।
(10)	ओपेरा—	खुले रंगमंच के एकांकी। अभी भारत में ऐसे एकांकियों का प्रचलन बहुत सीमित है।

—प्रो० कालीचरण 'स्नेही

□□□

लेखक परिचय

डॉ. रामकुमार वर्मा

डॉ० रामकुमार वर्मा हिन्दी में आधुनिक एकांकी की प्रतिष्ठा कराने वाले अग्रणी लेखकों में हैं। सन् 1905 ई० में सागर (मध्य प्रदेश) में इनका जन्म हुआ और सन् 1990 में निधन। कई वर्षों तक डॉ० वर्मा इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रोफेसर एवं अध्यक्ष रहे। इनके एकांकियों के अनेक संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इनके एकांकी प्रायः सामाजिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, भावात्मक, धार्मिक तथा मनोवैज्ञानिक वस्तु प्रधान हैं। डॉ० वर्मा जी द्वारा रचित 'बादल की मृत्यु' 1930 में प्रकाशित हिन्दी का पहला एकांकी नाटक माना जाता है। इनका प्रथम एकांकी संग्रह 'पृथ्वीराज की आँखें' सन् 1936 में प्रकाशित हुआ, जिसकी भूमिका में इन्होंने एकांकी को बड़े नाटकों से पृथक् मानकर उसकी अपनी विशेषताओं का स्पष्टतः उल्लेख किया है। हिन्दी में एकांकी के सैद्धान्तिक विवेचन का सम्भवतः यह प्रथम अवसर था। बाद के अपने एकांकी–संग्रहों की भूमिकाओं में भी इन्होंने एकांकी कला का विस्तृत परिचय दिया है। इनके अन्य एकांकी–संग्रह इस प्रकार हैं — 'रेशमी टाई' (1941), 'चारुमित्रा' (1942), 'विभूति' (1945), 'सप्तकिरण' (1947), 'रूपरंग' (1948), 'रजत–रश्मि' (1950), 'दीपदान' (1953), 'ऋतुराज' (1951), 'रिमझिम' (1955), 'इन्द्रधनुष' (1956) और 'पाञ्चजन्य' (1957), । 'कौमुदी–महोत्सव', 'ध्रुवतारिका' आदि एकांकी स्वतंत्र रूप से भी प्रकाशित हुए हैं। डॉ० वर्मा के प्रसिद्ध एकांकी विभिन्न नामों वाले संग्रहों में अनेक बार प्रकाशित हुए हैं। 'इतिहास के स्वर' और 'समाज के स्वर' कई–खण्डों में प्रदर्शित हैं, जिनमें लगभग सभी एकांकी आ गये

हैं। डॉ० रामकुमार वर्मा ने लगभग एक सौ एकांकी नाटकों की रचना की है। सामाजिक एकांकियों के साथ ही डॉ० वर्मा ने ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और पौराणिक एकांकियों की भी रचना की है। डॉ० वर्मा जी की भारतीय संस्कृति के प्रति गहरी आस्था है। उनके ऐतिहासिक एकांकियों में भारतीय इतिहास का उज्ज्वल अतीत साकार हो उठा है। त्याग, उदारता, दया, क्षमा, करुणा आदि उदात्त भावनाएँ इन एकांकियों में साकार हुई हैं। 'कौमुदी महोत्सव', 'दीपदान', 'तैमूर की हार' आदि एकांकी अत्यन्त प्रसिद्ध हुए हैं।

'कौमुदी महोत्सव' के प्रसिद्ध ऐतिहासिक प्रसंग को एकांकी नाटक का रूप दिया गया है। इस एकांकी का सृजन एक विशेष प्रयोजन से किया गया है। लेखक की धारणा है कि द्विजेन्द्रलाल राय तथा जयशंकरप्रसाद जी ने चन्द्रगुप्त के चरित्रांकन में उचित न्याय नहीं किया और उसका वास्तविक रूप प्रकट ही नहीं हो पाया। स्वयं लेखक ने 'कौमुदी महोत्सव' एकांकी नाटक की भूमिका में इस ओर संकेत किया है। "चन्द्रगुप्त और चाणक्य के इस गम्भीर चरित्र–चित्रण का उत्तरदायित्व मैंने अपने ऊपर लेने का साहस किया है। मैंने अपना कथानक 'मुद्राराक्षस' के कथानक के अनुसार ही रखा है। इसमें कुसुमपुर की विजय के पश्चात् कौमुदी महोत्सव मनाये जाने का आयोजन है। पाटलिपुत्र का भौगोलिक ज्ञान मैंने मैगस्थनीज़ और हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता से लेकर 'कौमुदी महोत्सव' की सजावट अपनी कल्पना से प्रस्तुत की है। चन्द्रगुप्त के इतिहास से उसका जो व्यक्तित्व मिला है, उसे मैंने मनोविज्ञान में इस प्रकार सुसज्जित किया है कि चन्द्रगुप्त के द्वारा प्रयुक्त समस्त उपमाएँ भी वीररस से परिपूर्ण हैं।"

डॉ० वर्मा ने चन्द्रगुप्त के उदात्त व्यक्तित्व को निरूपित करने का भरसक प्रयास किया है। उन्होंने चन्द्रगुप्त और चाणक्य का वार्तालाप और उसके माध्यम से दोनों के चरित्र को रूपायित किया है। ऐतिहासिक एकांकी होते हुए भी लेखक ने संकलनत्रय का पूर्ण निर्वाह किया है। कहीं भी घटनाओं का अनावश्यक विस्तार नहीं है। प्रत्येक नाटकीय

ासंग को पकड़ने की भी चेष्टा की गई है। भाषा के प्रति डॉ० वर्मा सदैव ी जागरूक रहे हैं। उनके कवि रूप ने संवादों में काव्यात्मकता का नेखार ला दिया है। उनके नाटकों में सीधी–सादी भाषा बोलने वाले पात्र कम ही मिलते हैं। संस्कृतनिष्ठ पात्र, अलंकृत भाषा का ही प्रयोग अधिक करते हैं। यह विशेषता उनके ऐतिहासिक और पौराणिक एकांकियों में धिक दृष्टिगोचर होती है। कहीं–कहीं बड़े–बड़े स्वगत कथनों का भी यवहार किया गया है। डॉ० रामकुमार वर्मा के एकांकी नाटकों का तिहासिक महत्त्व है। उनसे आधुनिक एकांकी के रूप–निर्माण एवं वेकास में बहुत योग मिला है। कुछ समीक्षक रामकुमार वर्मा को हिन्दी कांकी का जनक मानते हैं।

भुवनेश्वर प्रसाद

आधुनिक हिन्दी एकांकी की नयी दिशा प्रदान करने वाले ोखकों में भुवनेश्वर प्रसाद का नाम बड़ा महत्त्वपूर्ण है। भुवनेश्वर का न्म सन् 1910 में शाहजहाँपुर (उ०प्र०) में हुआ था। हिन्दी एकांकी के वोत्थान में भुवनेश्वर ने पाश्चात्य भावों तथा शिल्प को अपने एकांकियों के माध्यम से प्रकट किया है। उन्होंने पाश्चात्य प्रभाव बलपूर्वक ग्रहण किया, किन्तु अपनी मौलिक प्रतिभा का रंग चढ़ाकर भी उसे भारतीय विचारधारा और जीवन दर्शन में ढाल न सके। वे पाश्चात्य बुद्धिवाद से भावित थे। भुवनेश्वर ने सामाजिक व्यंग्य तथा फ्रॉयड से प्रभावित सेक्स म्बन्धी विचारधारा को अपने एकांकियों में प्रस्तुत किया है। शॉ और ब्सन की समस्यामूलक प्रवृत्तियों और यूरोपीय वस्तुवाद ने हिन्दी कांकी साहित्य को प्रभावित किया तथा यूरोपीय नाट्य साहित्य और थार्थवाद, बौद्धिकता से हिन्दी एकांकी साहित्य को पूर्ण कर दिया।

भुवनेश्वर का 'कारवाँ' (1936) हिन्दी में एक नई दिशा लेकर आया। भुवनेश्वर ने सामाजिक रूढ़ियों, प्रचलित किन्तु कृत्रिम विचार स्वतन्त्रता, साम्यवाद, विवाह–वैषम्य तथा मानव के अन्तर्जगत में उठने वाले काम, वासना, प्रेम आदि मनोविकारों से उत्पन्न मानसिक जटिलताओं का मार्मिक चित्रण किया है। भुवनेश्वर का सर्वप्रथम एकांकी 'श्यामा एक वैवाहिक विडम्बना' सन् 1936 में 'हंस' में प्रकाशित हुआ था। भुवनेश्वर के एकांकियों का मूल केन्द्र सेक्स तथा विभिन्न मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों का आवेशमय चित्रण है। उनके अधिकांश एकांकियों की समस्याएँ प्रेम और काम–वासना से सम्बन्धित हैं। पात्र सुशिक्षित समाज से लिये गये हैं जो कुंठाग्रस्त तथा विकृति–युक्त हैं। भुवनेश्वर ने पात्रों के साथ बड़ी ईमानदारी निभाई है। आन्तरिक द्वन्द्व अत्यन्त कुशलता के साथ चित्रित किया है। यह इनकी ऐकान्तिक विशेषता है।

भुवनेश्वर के एकांकी नाटकों से स्पष्ट होता है कि इस लेखक की चेतना बड़ी जागरूक है, और वह अपनी खुली आँखों से समाज की विकृतियों को देखता है तथा उन पर व्यंग्य करता है। इनके सभी एकांकी नाटक समस्या–प्रधान हैं और ये समस्याएं मुख्यतः प्रेम, विवाह और यौन सम्बन्धी हैं। भुवनेश्वर ने अपने एकांकियों में समस्याओं को उनके तीखेपन के साथ प्रस्तुत किया है, लेकिन कहीं उनके समाधान की ओर संकेत नहीं किया है। लेखक समस्याओं के समाधान में विश्वास भी नहीं करता। इस सम्बन्ध में उसने बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा है– 'एक समस्या को सुलझाना अनेक समस्याओं का सृजन करना है।'

'स्ट्राइक' एकांकी स्त्री–पुरुष के सम्बन्ध पर आधारित है। इस एकांकी में लेखक ने फैशनेबुल बुर्जुवा समाज के खोलनेपन का मखौल उड़ाया है। चिरशोषित भारतीय नारी, पुरुष के विरुद्ध स्ट्राइक करती है। स्त्री–पुरुष जीवनरूपी मशीन के दो पुर्जे हैं। संवादों के माध्यम से इस

ओर संकेत किया गया है। 'स्ट्राइक' के अन्त में श्रीचन्द्र को, जिसने एक युवक को अपने यहाँ खाने के लिए आमंत्रित किया है, यह ज्ञात होता है कि उसकी पत्नी उस रात घर नहीं आयेगी और तब युवक कहता है – "आइए, मेरे होटल में आइए, आपकी फैक्ट्री में तो आज स्ट्राइक हो गई।' इसके एक क्षण पहले पत्नी का संवाद लाने वाले चपरासी ने कहा था– 'हुजूर, आपका कुत्ता बड़ा पानीदार है। अंग्रेजी है?' इस तरह तीखे व्यंग्य के साथ चरम सीमा पर नाटक समाप्त हुआ है। भुवनेश्वर ने संकलनत्रय के बन्धन को नहीं माना है। उनके नाटकों के पात्र सरल और सुलझे हुए नहीं हैं। यह लेखक की विशेषता है कि उसने जटिल पात्रों को आकर्षक रूप में हमारे सामने प्रस्तुत किया है। हर पात्र में एक मानसिक गुत्थी दिखाई पड़ती है। भुवनेश्वर के नाटकों में जो प्रभाव है, उसका रहस्य कथानक–निर्माण और चरित्र–चित्रण में उतना नहीं, जितना संलापों और व्यंग्य–वक्रोक्तियों में है। भुवनेश्वर पर प्रसिद्ध नाटककार 'शॉ' का प्रभाव परिलक्षित होता है। भुवनेश्वर नाटक में भावुकता के विरोधी हैं और इसीलिए उनके संलापों में न भावुकता दिखाई पड़ती है न काव्यात्मकता, और न अलंकृत शैली। इनमें वाक्–विदग्धता, व्यंग्य और तीखापन है।

भुवनेश्वर के एकांकी नाटकों का हिन्दी एकांकी के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनकी बौद्धिकता, समस्या के प्रति जागरूकता, सांकेतिकता एवं व्यंग्य–वक्रोक्ति ने हिन्दी एकांकी को नयी दिशा प्रदान की है।

●

जगदीशचन्द्र माथुर

श्री माथुर का जन्म सन् 1917 ई० में उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर जनपद के अन्तर्गत खुर्जा नामक स्थान पर हुआ था। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद इन्होंने आई०

ए० एस० अधिकारी के रूप में अनेक महत्त्वपूर्ण पदों पर कार्य किया प्रशासनिक कार्यों में व्यस्त होते हुए भी ये साहित्य–साधना में अनवर संलग्न रहे। परिमाण में कम लिखकर अधिक ख्याति प्राप्त करने वा एकांकीकारों में जगदीशचन्द्र माथुर का नाम बहुत महत्त्वपूर्ण है। बाल्यावस्थ में इन्होंने सन् 1929 में 'बालसखा' के लिए एक प्रहसन लिखा 'मूर्खेश्वर राजा'। सन् 1931-32. में इनके दो एकांकी 'लवकुश' औ 'शिवाजी' मासिक पत्रिका 'सेवा' में प्रकाशित हुए थे। आधुनिक ढंग एकांकी नाटकों का लेखन सन् 1936 से प्रारम्भ हुआ, जब इनका एकां 'मेरी बाँसुरी' प्रयाग में म्योर होस्टल के स्टेज पर अभिनीत हुआ। य नाटक बाद में 'सरस्वती' में प्रकाशित भी हुआ। सन् 1937 और 19 के बीच लिखे गये पाँच एकांकी 'भोर का तारा', रीढ़ की हड्डी', 'कलि विजय', 'मकड़ी का जाला' और 'खण्डहर'। बाद के पाँच एकांकी 'ओ सपने' में संकलित हैं– 'घोंसले', 'खिड़की की राह', 'कबूतरखान 'भाषण' और 'वो मेरे सपने'। "शारदीया' शीर्षक से एक एकांकी 'कल्प (अप्रैल 1955) में प्रकाशित हुआ था और 'बन्दी', 'संकेत' में छपा था

हिन्दी एकांकी-धारा को अत्यन्त कलात्मक एकांकियों द्वा परिपुष्ट करने वालों में जगदीशचन्द्र माथुर महत्त्वपूर्ण हैं। इन्होंने अ एकांकियों में रंगमंचीय रचना–विधान एवं साहित्यिक शैली का अद्भु संयोग किया है। इनके एकांकी आधुनिक सभ्य जगत की नाना सामाजि समस्याओं पर व्यंग्य करते हैं। साथ ही उनके एकांकियों में विच समस्या तथा वातावरण का पूर्ण परिपाक है। सामाजिक नाटकों में मा जी ने प्रमुख रूप से मध्य वर्ग और उच्च वर्ग की समस्याओं, मिथ दिखावों और उनके जीवन के भीतरी खोखलेपन, हृदय की स्वार्थपर अनैतिकता और झूठ–फरेब का प्रभावशाली और स्पष्ट रूप से चित्र किया है। प्राचीन रूढ़ियों, जर्जर मान्यताओं और उनसे चिपके रहते भी नयेपन का ढोंग करने वाली भावनाओं पर निर्मम प्रहार किया

माथुर जी अपने ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास की गौरवशाली कथाओं और आदर्श पात्रों को प्रस्तुत किया है। वे पात्र अपने कल के मानवीय अदम्य संघर्षशीलता के प्रतीक और आदर्श हैं। उनके संवाद, साहित्यिक शैली में अपनी व्यक्तिगत गंभीरता लिए हुए हैं। माथुर जी के एकांकी नाटकों की संख्या अधिक नहीं है, पर उनमें शिल्प की पर्याप्त परिपक्वता दिखाई देती है। उनके एकांकियों ने हिन्दी रंगमंच के उत्थान का मार्ग खोल दिया है। 'भोर का तारा', रीढ़ की हड्डी' और 'ओ मेरे सपने' माथुर जी के अत्यन्त प्रसिद्ध एकांकी हैं। ये एकांकी हमारे दंभी समाज के खोखलेपन का पर्दाफाश करते हैं। माथुर जी के अधिकांश एकांकी आज की सामाजिक पृष्ठभूमि पर लिखे गये हैं। इस बात को उन्होंने 'ओ मेरे सपने' एकांकी संग्रह की भूमिका में स्वयं स्वीकारा है। उन्होंने सामाजिक विकृतियों पर व्यंग्य करने के लिए सशक्त भाषा का प्रयोग किया है। 'रीढ़ की हड्डी' एकांकी में इसका प्रमाण अधिक मिलता है। उनके एकांकियों में कथानकों का क्रमिक विकास हुआ है। पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व, विकास तथा संघर्ष को गति प्रदान करता है। पाश्चात्य शैली का माथुर जी ने अनुकरण किया तो है, लेकिन प्रमुख रूप से उन पर भारतीय शैली का प्रभाव है। उनके एकांकियों में दोनों शैलियों का सुन्दर समन्वय मिलता है। स्वगत कथनों का अभाव है। उनके एकांकी नाटकों का मंचन सहजता एवं सुगमता से किया जा सकता है। माथुर जी के एकांकी सभी दृष्टियों से पूर्ण एवं सफल हैं।

'रीढ़ की हड्डी' एकांकी में आज के शिक्षित युवकों द्वारा विवाह के लिए बाजार से गाय–बैलों को खरीदने के लिए 'रंग पुट्ठों' और शरीर की सुडौलता की परख करने वाली दृष्टि से लड़की को देखने की प्रवृत्ति पर करारा व्यंग्य है। इस एकांकी का कथानक संक्षिप्त ही है। आज के समाज की यथार्थ स्थिति का अंकन इसमें किया गया है।

लड़का और उसके पक्ष के लोग लड़की के घर जाकर लड़की के शरीर, उसके अवयवों की गठन और उठान पर ऐसी दृष्टि डालते हैं कि कोई भी लड़की इसे अपना अपमान समझे बिना नहीं रह सकती। वह स्थिति कितनी अपमानजनक हो सकती है, जब लड़का और उसके पक्ष वाले लड़की के शरीर की आलोचना करते हैं। ठीक उसी प्रकार जैसे गाय-बैल खरीदने वाला आलोचना करता है।

इस एकांकी के संवाद अत्यन्त सशक्त और पात्रानुकूल हैं। प्रेमा जो रामस्वरूप की पत्नी है, उसके मुख से नाटककार ने कुछ ग्रामीण शब्द भी व्यक्त कराये हैं जैसे 'ज़तन, लच्छन, पौडर' आदि। इनसे स्वाभाविकता का ही निर्माण हुआ है। उमा का कथन भारतीय समाज के नारी वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। मंचीयता की दृष्टि से 'रीढ़ की हड्डी' एकांकी पूर्ण रूप से सफल है। रंग-संकेत नाटककार ने कुशलता से दिये हैं। निर्देशक और पात्रों को इन संकेतों से स्थिति का पूरा-पूरा ज्ञान हो जाता है। यह एकांकी कई स्थानों पर अभिनीत किया जा चुका है।

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल

डॉ० लाल का जन्म सन् 1925 में हुआ और 20 नवम्बर सन् 1987 को इनका निधन हो गया। हिन्दी में ऐसे नाटककार कम ही हैं, जो स्वयं रंगकर्मी भी हों और नाटककार भी। डॉ० लाल की यह विशेषता मानी जायेगी कि रंगमंच का प्रत्यक्ष अनुभवी होने के कारण उनके नाटक और एकांकी, मंच की दृष्टि से सफल हैं। उनके कुछ नाटक तो मील के पत्थर माने जाते हैं। 'मादा कैक्टस' और 'दर्पण' इसी प्रकार के नाटक हैं। डॉ० लाल, नाट्य केन्द्र जैसी नाट्य संस्था से संबद्ध रहे हैं और

नाटक-लेखन से लेकर उसकी प्रस्तुति तक का उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव है। डॉ० लाल ने पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक सभी प्रकार के एकांकी लिखे हैं और इस क्षेत्र में मौलिकता का परिचय दिया है। प्रारम्भ में उनकी रुचि ऐतिहासिक नाटकों की ओर विशेष रूप से थी, पर बाद में वे सामाजिक नाटकों की ओर आते गये हैं। डॉ० लाल ने अपने प्रारम्भिक एकांकियों में प्रायः महाभारत और मुगलकालीन इतिहास से प्रसंग लिये हैं। बाद के एकांकियों का परिप्रेक्ष्य पूरी तरह सामाजिक है। उनके एकांकियों में रंगमंच का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है। इसी कारण एकांकी में वे प्रायः दृश्य एक ही रखते हैं। ऐतिहासिक एकांकियों में प्रायः अनावश्यक विस्तार की संभावना रहती है, पर डॉ० लाल अपने एकांकी-शिल्प के प्रति इतने जागरूक हैं कि उनके ऐतिहासिक एकांकियों में भी अनावश्यक विस्तार नहीं है। वे चरम सीमा पर पहुँचकर ही समाप्त हो जाते हैं। भाषा अत्यन्त सशक्त है। संवाद स्वाभाविक हैं। एक ओर एकांकीकार ने आज के युग के सामाजिक जीवन की यथार्थ समस्याओं को व्यापक तथा सूक्ष्म स्तर पर ग्रहण किया है, तो दूसरी ओर अपने प्रत्येक एकांकी में रंगमंच को अधिकाधिक सशक्त बनाने का प्रयत्न किया है। रंग सूचनाएँ डॉ० लाल ने व्यापकता से दी हैं।

प्रयोगशीलता की दृष्टि से लक्ष्मीनारायण लाल हिन्दी के आधुनिक नाटककारों में सर्वाधिक जागरूक कहे जा सकते हैं। इनके एकांकी नाटकों में भी प्रयोगों का आग्रह दिखलायी पड़ता है। यह अवश्य ही कहा जायेगा कि आग्रह, परम्परागत शिल्प पूर्णता अस्वीकार करने या तोड़ने के लिए नहीं, बल्कि ऐसी नवीनता उत्पन्न करने के लिए है, जिससे कथ्य अधिक प्रभावशाली बन सके। नवीनता की दृष्टि से लक्ष्मीनारायण लाल के अनेक नये एकांकी उल्लेख्य हैं– 'काफी हाउस में इन्तजार', 'दूसरा दरवाजा', 'हाथी, घोड़ा, चूहा', केवल तुम और हम', 'यक्ष प्रश्न' और 'उत्तर युद्ध'। डॉ० लाल के सभी एकांकी नाटकों की विशेषता है कि

वे रंगमंच से बड़े गहरे रूप में जुड़े हुए हैं और नवीन प्रयोगों के बावजूद उनकी बोधगम्यता में कोई कमी नहीं आती है। डॉ० लाल के अन्य एकांकी हैं– 'अखबार', 'परिचय', 'शहर', 'अप्रासंगिक', 'खेल', 'एक घण्टा', 'नन्हीं' और 'क्रिकेट'। इनमें समसामयिक जीवन की विसंगतियों, युवा पीढ़ी की दिशाहीनता और असन्तोष को विशेष रूप से चित्रित किया गया है। शिल्प में पर्याप्त वैविध्य है, पर नयी अभिव्यक्ति भंगिमा सबमें दिखती है। 'ताजमहल के आँसू', 'पर्वत के पीछे', 'नाटक बहुरंगी' आदि डॉ० लाल के प्रमुख एकांकी संग्रह हैं। नाटकों में मिस्टर अभिमन्यु, दर्पण, रातरानी, मादा कैक्टस, नरसिंह कथा, चतुर्भुज राक्षस, सूखा सरोवर आदि बहुचर्चित हैं।

'नाटकी बहुरंगी' डॉ० लाल का अत्यन्त सशक्त एकांकी संकलन है। इसमें संकलित 'मम्मी ठकुराइन' एकांकी अत्यन्त लोकप्रिय है। इस एकांकी की कलात्मक उद्भावना में रंगमंचीय तत्त्व इस प्रकार सन्निहित हैं कि इसके पूरे सौन्दर्यबोध को रंगमंच के संदर्भ में ग्रहण किया जा सकता है। इसका दृश्य विधान मौलिक और यथार्थपरक है। मम्मी और ठकुराइन के घर, गली में आमने–सामने हैं और गली दूर तक दिखाई देती है। प्रस्तुत एकांकी हमारे सामाजिक जीवन की विशेष स्थिति–आधुनिक और प्राचीन परम्परा संघर्ष पर आधारित है। इसी कारण यथार्थ का आग्रह भी इसमें सहज ही है, परन्तु इस यथार्थ में अनुकरणात्मक नीरसता और व्यंग्यात्मक तीखेपन की अपेक्षा कलात्मक अनुभव तक पहुँचाने का आग्रह निहित है। लेखक ने इसके लिए गली और उसके परिवेश, आधुनिक मम्मी और प्राचीन संस्कारों की ठकुराइन को साधारण यथार्थ से अधिक गहरा रंग प्रतीकार्थ रूप में देने का प्रयत्न किया है और इसमें उसे सफलता भी मिलती है। वस्तुतः डॉ० लक्ष्मी नारायण लाल इस दौर के शीर्षस्थ नाटककार और रंगकर्मी के रूप में जाने जाते हैं।

उदयशंकर भट्ट

श्री उदयशंकर भट्ट का जन्म सन् 1898 में बुलन्दशहर (उ० प्र०) में हुआ था। भट्ट जी के पूर्वज गुजरात से आकर उ० प्र० में बस गये थे। पंजाब विश्वविद्यालय से इन्होंने बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की और लाहौर के सनातन धर्म कॉलेज में अध्यापक के रूप में कार्य किया। अध्यापन-काल में ही आपमें नाटक लिखने की रुचि विकसित हुई। पाश्चात्य नाट्य प्रणाली और संस्कृत नाट्य प्रणाली का गम्भीर अध्ययन-मनन कर उदयशंकर भट्ट एक नवीन शैली को लेकर हिन्दी के एकांकी साहित्य के क्षेत्र में अवतीर्ण हुए। उनकी विचारधारा पर गांधीवाद और सुधारवाद का विशेष प्रभाव है। वे मूलरूप में यथार्थवादी एकांकीकार हैं। उन्होंने आदर्श को उसी सीमा तक ग्रहण किया है जहाँ तक वह व्यक्ति को विकासोन्मुख कर सके। वे युग धर्म से प्रेरित होकर रचनाएँ करते थे। परम्परा रूढ़ि, संस्कार और विश्वास को युग के नये मापदण्ड से परखने का उन्होंने प्रयत्न किया।

उनका पहला एकांकी–संग्रह 'अभिनव एकांकी' के नाम से 1940 में प्रकाशित हुआ। उसके बाद 'आदिम युग', समस्या का अन्त', 'धूमशिखा', 'पर्दे की पीछे', 'जवानी', 'छै एकांकी' 'स्त्री का हृदय' आदि एकांकी संग्रह प्रकाशित हुए। इन संग्रहों में संगृहीत एकांकियों में जीवन की विविध समस्याओं का चित्रण है। उदाहरणार्थ– 'बाबूजी' 'यह स्वतंत्रता का युग' 'बार्गेन' और 'स्त्री का हृदय' एकांकियों में पारिवारिक समस्याएँ, 'मंदिर के द्वार पर' तथा 'सत्य का मंदिर में धार्मिक समस्याएँ, अघटित' और पिशाचों का नाच' में राजनीतिक समस्याएँ और 'गिरती दीवार' में सांस्कृतिक समस्याएं हैं। 'आज का आदमी' और ''मन का रहस्य' एकांकियों में मनुष्य की कमजोरियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। 'नेता' 'वर निर्वाचन' 'समस्या का अन्त', 'नकली और

असली', 'वापसी', 'बाबूजी' 'यह स्वतन्त्रता का युग ' 'कुंदन और तुलसी' 'आत्मदान', 'दो अतिथि', 'नयी बात' आदि एकांकी जीवन के विविध पक्षों का उद्घाटन करते हैं। इसके अतिरिक्त उदयशंकर भट्ट के 'विश्वामित्र' 'मत्स्यगंधा' और 'राधा' नाम के तीन भाव नाट्य प्रकाशित हुए। इसी तरह 'गांधी का राम राज्य', 'एकला चलो रे' आदि रेडियो–एकांकी आकाशवाणी से भी प्रसारित हुए हैं।

भट्ट जी का एकांकी–साहित्य सामाजिक, राष्ट्रीय जागरण तथा सांस्कृतिक उत्थान से सम्बन्धित है। भट्ट जी के एकांकी–नाटक उनके बड़े नाटकों की अपेक्षा शिल्प-विधान की दृष्टि से अधिक सफल हुए हैं। उनके एकांकियों में मानव-जीवन के विविध पक्षों का व्यंग्यपूर्ण चित्र प्रस्तुत हुआ है। यद्यपि इनका व्यंग्य अश्क जी की भाँति तीखा और निर्मम नहीं है, पर इसके बदले जीवन की कटु–स्थितियों और विषमताओं के पीछे इनके मन में उनके प्रति गहरी टीस और करुणा की वेदना छिपी रहती है। वह उनकी बौद्धिकता तथा भावुकता के समन्वय से एक अत्यन्त कलात्मक रूप ग्रहण करती दिखाई देती है। 'दस हजार' एकांकी भट्ट जी का प्रथम एकांकी है। यह एकांकी सन् 1938 में प्रकाशित हुआ था। इस एकांकी में भट्ट जी ने अत्यन्त कुशलता से एकांकी के नायक के मन की दो प्रधान प्रवृत्तियों के बीच संघर्ष का चित्रण किया है। 'नये मेहमान' उदयशंकर भट्ट जी का एक सफल आधुनिक एकांकी है। इसमें इनकी कला के समस्त तत्त्वों का औचित्य द्रष्टव्य हैं। रंगमंच की दृष्टि से भी यह अत्यन्त सफल एकांकी है।

—डॉ० परशुराम पाल

संकलित एकांकी

- कौमुदी महोत्सव
  —डॉ० रामकुमार वर्मा
- स्ट्राइक
  —भुवनेश्वर प्रसाद
- रीढ़ की हड्डी
  —जगदीशचन्द्र माथुर
- मम्मी-ठकुराइन
  —डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल
- नये मेहमान
  —उदयशंकर भट्ट

कौमुदी महोत्सव

—डॉ० रामकुमार वर्मा

पात्र-परिचय

चन्द्रगुप्त	:	कुसुमपुर के मौर्य सम्राट्
चाणक्य	:	सम्राट चन्द्रगुप्त के महामंत्री
वसुगुप्त	:	कुसुमपुर के समाहर्त्ता
यशोवर्मन	:	कुसुमपुर के अन्तपाल
पुष्पदन्त	:	कुसुमपुर के कार्यान्तिक
अलका	:	राजनर्तकी
		सैनिक और दौवारिक
समय	:	ईस्वी पूर्व 322

[बाहर चारों ओर कोलाहल हो रहा है। बीच–बीच में तुरही का नाद हो उठता है। शंख और घंटों की आवाज भी सुनाई पड़ती है। धीरे–धीरे यह ध्वनि क्षीण होती जाती है।

राज–कक्ष में समाहर्त्ता वसुगुप्त और अन्तपाल यशोवर्मन बातें कर रहे हैं।]

वसुगुप्त : आज कुसुमपुर की जनता का कोलाहल कितना उभरा हुआ है। ढाल के मध्य भाग की भाँति वह किसी भी तलवार का वार रोकने के लिए आगे बढ़ आया है। कुसुमपुर का उत्साह एक ढाल की तरह है जिस पर विद्रोह की तलवार भी कुंठित हो जायेगी। अब तो अन्तपाल यशोवर्मन का सन्देह दूर हो गया होगा।

यशोवर्मन : वसुगुप्त ! सन्देह पानी का बुलबुला नहीं है जो एक क्षण में भंग हो जाता है। सन्देह तो धूमकेतु की रेखा है जो आकाश में एक छोर से दूसरे छोर तक फैली रहती है, और धूमकेतु जानते हो किस बात का प्रतीक है ? भय का, आशंका का, अमंगल का।

वसुगुप्त : किन्तु भय, आशंका और अमंगल तो नहीं है। नन्दवंश का विनाश होते ही ये ढाक के तीन पात की तरह अलग हो गये।

यशोवर्मन : अलग–अलग भले ही हो गये हों पर हैं तो !

वसुगुप्त : अब रहे भी नहीं। जब शक, यवन, पारस और वाह्लीक राजाओं के साथ महाराज चन्द्रगुप्त ने कुसुमपुर में प्रवेश किया तो सारी प्रजा ने उनका स्वागत किया। क्या इस कोलाहल में तुमने प्रजाजनों के उत्साह की सरिता उमड़ते हुए नहीं देखी ?

यशोवर्मन : देखी, किन्तु इस उत्साह के बीच ऐसे कंठ भी हो सकते हैं

जिनमें व्यंग्य और परिहास की ध्वनि हो। नन्द के प्रति राजभक्ति अभी निष्प्राण नहीं हुई है। हरी घास में कुश और कंटक भी होंगे।

वसुगुप्त : तो वे निर्मूल कर दिये जायेंगे।

यशोवर्मन : किन्तु आपको क्या ज्ञात नहीं है कि महाराज नन्द के मंत्री राक्षस की नीति छद्म वेश धारण कर चलती है ? नन्द नहीं हैं किन्तु नन्द के मंत्री तो हैं जो छिप कर कुसुमपुर से बाहर चले गए हैं !

वसुगुप्त : तो हमारे पास भी महिचानने वाली आँखें हैं। **(जनरव फिर बढ़ता है।)** देखो, यह जनरव क्यों बढ़ रहा है ? **(वातायन बन्द करते हैं।)**

वसुगुप्त : तो सम्राट चन्द्रगुप्त ने जब कुसुमपुर में प्रवेश किया तो पहला कार्य तो यहाँ की शासन–व्यवस्था ठीक करना है।

यशोवर्मन : आचार्य चाणक्य के मस्तिष्क में राजनीति के न जाने कितने व्यूह प्रतिदिन बन कर बिगड़ते हैं, उनसे अधिक राजनीति की व्यवस्था कौन कर सकता है?

वसुगुप्त : तो क्या सम्राट चन्द्रगुप्त का मस्तिष्क केवल बाहु–बल का केन्द्र है ?

यशोवर्मन : हाँ, आचार्य चाणक्य की नीति और सम्राट, चन्द्रगुप्त के बाहु–बल ने ही नन्दवंश को समाप्त किया है। नन्द्वंश की विलासिता–संध्या सम्राट् चन्द्रगुप्त की यशचन्द्रिका के सामने अधिक देर तक नहीं रुक सकी।

[नैपथ्य में 'सम्राट् चन्द्रगुप्त की जय' का घोष]

वसुगुप्त : **(उत्सुकता से)** सम्राट आ गये ? तो क्या जनता का इतना कोलाहल उंन्हीं के स्वागत के लिए था ? वातायन खोल कर देखो, यशोवर्मन !

यशोवर्मन : मैं देखता हूँ। **(वातायन खोलते हैं। जनरव फिर तीव्रता**

से सुनाई पड़ता है।) हाँ, जनता उत्सुकता से पुष्पों के हार उछाल रही है ! महाराज ने अंतरंग प्रकोष्ठ के सिंह–द्वार से प्रवेश कर लिया है। उनका वेश इस समय दर्शनीय है। विस्तीर्ण ललाट, उठी हुई नासिका और बड़े–बड़े अरुण नेत्र। वे नागरिकों से कुछ कह भी रहे हैं। कहते समय उनकी वाणी में वीरत्व उसी प्रकार गुंजायमान होता है जैसे दिशाओं में दूर से आती हुई प्रतिध्वनि सिमट कर अंतिम स्वर में गूँजती है। उनकी भौंहों में स्वाभाविक रूप से बल पड़े हुए हैं जैसे दृष्टि के ऊपर आकांक्षाएँ वक्र होकर दुहरी हो गई हैं। घुँघराले मुक्त केशों पर मुकुट है जिसकी कलंगी सिर के हिलने मात्र से लज्जाशील नारी की दृष्टि की भाँति झुक जाती है। भुजदण्डों में शक्ति का संचय है। ज्ञात होता है जैसे वे राज्य के मेरुदण्ड हैं। सैनिकों जैसा वेश, हृदय पर मोतियों की माला, कमर में मखमली म्यान के भीतर खड्ग ! बड़ा उत्साहपूर्ण वेश–विन्यास है उनका !

वसुगुप्त : **(प्रसन्नता से)** सचमुच सम्राट, सम्राट वीर–रस के प्रतीक हैं ? वह दौवारिक आया।

[दौवारिक का प्रवेश]

दौवारिक : महाराज की जय ! सम्राट का आगमन हो रहा है।

वसुगुप्त : हमलोग भी उनके स्वागत के लिए उत्सुक हैं। तुम जाओ बाहरी द्वार पर सम्राट पर पुष्प–वर्षा हो।

दौवारिक : जो आज्ञा। **(प्रस्थान)**

यशोवर्मन : सम्राट ने तक्षशिला में ग्रीक सैन्य–संचालन का जो कौशल देखा है, उस कौशल के बल पर तो वे समस्त भारत पर अपना साम्राज्य स्थापित कर सकते हैं। उन्होंने विदेशी राजनीति को स्वीकार कर किसी भविष्य के कार्य–क्रम की नींव डाली है। यह बहुत कम लोग जानते हैं।

सुगुप्त: राजनीति के साथ नारी ? यही तुम्हारे कहने का तात्पर्य है?

[दबी हुई सम्मिलित हँसी]

[सम्राट की जय –ध्वनि के बाद सम्राट् चन्द्रगुप्त का कार्यान्तिक पुष्पदन्त के साथ प्रवेश]

ासुगुप्त और यशोवर्मन : (सम्मिलित स्वर में) सम्राट् की जय !

न्द्रगुप्त : समाहर्त्ता वसुगुप्त ! कुसुमपुरी का वैभव मैंने देखा। मुझे ऐसा ज्ञात होता है जैसे युद्ध की भैरवी ने काषाय वस्त्र धारण कर लिए हैं और वह संन्यासिनी हो गई है। नगर की शोभा मलिन है जैसे तलवार की झनकार वायु में विलीन हो गई है। नागरिकों का यह उल्लास शृगालों का कोलाहल जैसा ज्ञात होता है जिसे हमें मनुष्यत्व देना है। नागरिकों से कहला दो कि अब अपने घर जाएँ।

ासुगुप्त: जो आज्ञा, सम्राट !

[प्रस्थान ! धीरे –धीरे जनरव शान्त हो जाता है।]

न्द्रगुप्त : और अन्तपाल यशोवर्मन ! जो तेज मैंने ग्रीक सैनिकों के सेवकों में देखा था वह कुसुमपुर के प्रतिष्ठित नागरिकों तक में नहीं है। यहाँ के व्यक्तियों में स्पष्ट बात कहने का साहस नहीं है। एक छल है, एक विडंबना है जो सोन नदी की भाँति कुसुमपुर को घेरे हुए है। उसे बन्धनमुक्त करो, यशोवर्मन।

यशोवर्मन : मुझे विश्वास है, सम्राट। आचार्य चाणक्य की नीति से कुसुमपुर एक कुसुम के समान सुन्दर और आपकी कीर्ति की भाँति निर्मल हो जायगा।

[वसुगुप्त का प्रवेश]

चन्द्रगुप्त : संभव हैं आर्य चाणक्य की नीति ने कुसुमपुर की राजनीति में ऐसे चक्रव्यूह की रचना की है, जिसमें अराजकता का

पथ मृत्यु की दीवार पर जाकर समाप्त होता है। और उ
मृत्यु–दीवार की नींव में जानते हो, क्या है ? सम
नन्द–वंश चिर निद्रा में शयन कर रहा है।

वसुगुप्त : और उस नन्द वंश की आँखों में विलासिता का मद अंति
क्षणों तक रहा है।

चन्द्रगुप्त : मुझे इस बात का दुःख है, किन्तु राजनीति कृपाण की ध
का मार्ग है। जो व्यक्ति विलासिता का बोझ अपने सिर
रखकर चलता है, वह उस कृपाण को निमंत्रण देता है
वह उसके शरीर के दो टुकड़े कर दे। मैं आचार्य चाण
के चक्र–व्यूह की मृत्यु–दीवार को जीवन का प्रकाश–स्त
बनाना चाहता हूँ।

वसुगुप्त : सम्राट् के बाहु–बल में और आचार्य चाणक्य की नीति
यह क्षमता है।

चन्द्रगुप्त : आचार्य चाणक्य की सहायता से जो कुछ भी अभी त
हुआ है, उनके प्रति नागरिकों को असन्तोष तो नहीं हो
चाहिए। तक्षशिला के अनुभव से मैं कुसुमपुर की स
बाधाएँ दूर करना चाहता हूँ। शासन का मापदण्ड प्रजा
सन्तोष और सुख होना चाहिए।

यशोवर्मन : सम्राट का कथन सत्य है।

चन्द्रगुप्त : इसीलिए मैं एक महोत्सव का आयोजन करना चाहता
कौमुदी महोत्सव। शरद् ऋतु की आज पूर्णिमा है। इसलि
समाहर्त्ता वसुगुप्त के प्रस्ताव के अनुसार मैंने मध्याह्न में इ
निर्णय की घोषणा कर दी है– प्रकृति की इस चन्द्रम
निर्मलता में जनता के हृदय की समस्त पापवासनाएँ धु
जावें। कौमुदी महोत्सव, इस भाँति, कुसुमपुर का महा
राजनीतिक पर्व है।

वसुगुप्त : सम्राट ! कुसुमपुर के सिंह–द्वार ने अभी तक शृगालों व

स्वागत किया है। आपके प्रवेश ने सिंह–द्वार का नाम सार्थक किया।

चन्द्रगुप्त : तुम प्रसन्न कर देने वाली बात कह सकते हो, वसुगुप्त ! इसीलिए मैंने तुम्हें कुसुमपुर का नागरिक होने पर भी 'कर' एकत्रित करने वाले समाहर्त्ता का नवीन पद दिया है। तुम मधुर बातें कर अच्छी तरह कर एकत्रित 'कर' सकते हो।

वसुगुप्त : यह सम्राट की कृपा है।

चन्द्रगुप्त : फिर प्रजा का सन्तोष ही मेरे सुख का अग्रदूत है। **(कार्यान्तिक पुष्पदन्त को संबोधित करते हुए)** कार्यान्तिक पुष्पदन्त ! कौमुदी महोत्सव के लिए कुसुमपुर के नागरिकों में उत्सुकता है ?

पुष्पदन्त : सम्राट ! जिस समय से कौमुदी महोत्सव का संवाद नागरिकों के समीप पहुँचा है, उस समय से प्रत्येक नागरिक ने शूद्र महापद्मनन्द की क्रूरता के उपसंहार में आपकी उदारता का 'भरत वाक्य' जोड़ दिया है। सम्राट ने आर्य चाणक्य की सहायता से शस्त्र, शस्त्र और पृथ्वी का उद्धार किया है। आपका कुसुमपुर में प्रवेश शस्त्र की विजय का सूचक है जिसमें शास्त्र का संतोष और पृथ्वी का कल्याण है।

यशोवर्मन : प्रजा–वर्ग में से कुछ व्यक्ति नन्दवंश के समर्थक हो सकते हैं और नन्दवंश के विनाश से उनका क्षुब्ध होना स्वाभाविक है, इसलिए कौमुदी महोत्सव के संबंध में सम्राट् को घोषणा असंतोष को सुख और ऐश्वर्य से भर कर उसमें राजभक्ति की तरंग उठा सकती है। कौमुदी महोत्सव में कुसुमपुर के निवासी अपनी नगरी की शोभा देखकर अपने वैर–विरोध को भूल सकते हैं। नगरी का ऐश्वर्य देख कर उनके विचारों की दिशा में परिवर्तन हो सकता है। किन्तु हमें यह उत्सव सतर्कता से देखना चाहिए।

वसुगुप्त : सतर्कता से देखने की ऐसी विशेष आवश्यकता नहीं है नगरी का ऐश्वर्य, जननी का ऐश्वर्य है। जननी का ऐश्व देख कर किस पुत्र को प्रसन्नता न होगी ? अपरिचि व्यक्ति की ओर से आयी हुई कल्याण–कामना भी ज रुचिकर ज्ञात होती है तो सम्राट् ! आप जैसे उदारम सम्राट की ओर से की गई कल्याण–कामना नागरिकों हृदय में सम्राट के प्रति भक्ति और श्रद्धा की मंदाकि प्रवाहित किये बिना नहीं रहेगी।

चन्द्रगुप्त : ऐसा ही हो ! **(कार्यान्तिक पुष्पदन्त से)** क्यों कार्यान्ति पुष्पदन्त! कौमुदी महोत्सव का क्या प्रबन्ध किया गया है

पुष्पदन्त : सम्राट ! कौमुदी महोत्सव के अवसर पर कुसुमपुर सजाने में नायक ने अपनी सारी शक्ति लगा दी है। सो और गंगा के संगम पर एक शत नौकाओं को सम्राट शुभ नाम के आकार में सजा कर उन पर चालीस हा ऊपर आकाश–दीपों की व्यवस्था की गई है जिस शरद–चन्द्रिका के हास के साथ सम्राट का नाम भी दी का आलोक–मंडल बनाता हुआ नागरिकों के हृदयों प्रवेश कर जावे।

चन्द्रगुप्त : यह मनोवैज्ञानिक चातुर्य है। और ?

पुष्पदन्त : नगर के काष्ठ--प्राचीर के चौंसठ द्वारों पर मंगल कलश की तरंगें सुसज्जित होंगी। दूर से ऐसा ज्ञात होगा कि कुसुमपुर प्रकाश का एक सरोवर है जिसमें चारों ओर दीप–किरणों की चौंसठ तरंगें प्रवाहित हो रही हैं।

चन्द्रगुप्त : यह सौन्दर्य–रचना सराहनीय है।

पुष्पदन्त : सम्राट् ! प्राचीर पर दो सौ सत्तर अलिन्द है उनमें नगर की उतनी ही बालाएँ मणिजड़ित आभूषणों से अपने को सुसज्जित कर प्रकाश के आलोक में नृत्य करेंगी। उनके नृत्य में जब उनके रत्न, प्रकाश की किरणों से आलोकित होंगे तो ज्ञात

होगा जैसे किरणों के कमलों में प्रकाश–बिन्दुओं के भ्रमर क्रीड़ा कर रहे हैं।

चन्द्रगुप्त : यह तो बहुत सुन्दर होगा !

पुष्पदन्त : और सम्राट ! प्राचीर के चारों ओर जो सोन नदी की नहर है उसमें सहस्रों दीप–दान होंगे। ज्ञात होगा जैसे नगर के चारों ओर दीपों की आकाश–गंगा बहती जा रही है।

वसुगुप्त: सम्राट ! नायक पुरस्कार का अधिकारी है।

चन्द्रगुप्त : निस्सन्देह ! और कार्यान्तिक पुष्पदन्त ! तुम इस बात की घोषणा कर दो कि इस महोत्सव में जितने भी पण व्यय किये जायँ वे राजकोष से व्यय न होकर मेरे 'चन्द्रकोष' से व्यय किये जायँ। यद्यपि इस उत्सव से प्रजावर्ग का मनोरंजन होगा तथापि इसका व्यय–भार मैं वहन करूँगा।

वसुगुप्त: यह सम्राट् की उदारता है। शूद्र राजा महापद्म तो प्रजा से सहस्र पण लेकर उन्हें अपने विलास में व्यय करते थे और प्रजाजनों को उसी अवसर पर प्राण–दण्ड का पुरस्कार मिलता था। अपने को एक राष्ट्र घोषित करते हुए भी वे प्रजा–जनों के हृदय में अणुमात्र भी स्थान नहीं बना सके थे। यही अवस्था उनके पुत्र धननन्द के समय में थी।

चन्द्रगुप्त : वसुगुप्त ! अपने समारोह की इन अरुचिकर चर्चाओं से क्षत–विक्षत मन होने दो।

वसुगुप्त: मुझसे भूल हुई सम्राट् ! मैं क्षमा–प्रार्थी हूँ।

चन्द्रगुप्त : और कार्यान्तिक पुष्पदन्त ! प्रजा–भवनों का शृंगार कैसा होगा ?

पुष्पदन्त : सम्राट ! प्रजा–भवनों की श्रेणी में विविध रंग के प्रकाश–तोरणों की व्यवस्था है। ऐसा ज्ञात होता है जैसे रात्रि में सम्राट की राजधानी में सप्त–रंगों के इन्द्र–धनुष विविध नृत्यु–मुद्राओं में सजे हैं।

वसुगुप्त: और इस अवसर पर सम्राट, के समक्ष नन्द–वंश ट राजनर्त्तकी के नृत्य की व्यवस्था भी तो होनी चाहिए।

यशोवर्मन : यह समय तो नगरी की शोभा देखने का होगा, नर्त्तकी व शोभा देखने का नहीं।

वसुगुप्त: नगरी की शोभा देखने के अनन्तर सम्राट, विश्राम चाहेंगे! विश्राम के क्षणों को निद्रालु बनाने के लिए राजनर्त्त के नृत्य की आवश्यकता भी होगी।

चन्द्रगुप्त : कार्यान्तिक पुष्पदन्त ! जाओ, और नायक से कौमु महोत्सव की व्यवस्था शीघ्र करने के लिए कहो ! चन्द्रकोष से उसे पाँच सहस्र पण के पुरस्कार की सूच भी दो। कौमुदी महोत्सव के प्रारम्भ का संकेत मु तूर्यनाद से मिलना चाहिए।

पुष्पदन्त : जो आज्ञा सम्राट्।

[प्रस्थान्]

चन्द्रगुप्त : नायक वास्तव में पुरस्कार का अधिकारी है। कुसुमपुर ऐसी सौन्दर्य रचना संभवतः पहली बार होगी ! क वसुगुप्त ?

वसुगुप्त: निस्संदेह सम्राट् ! कुसुमपुर में रहते मेरा इतना जीव व्यतीत हुआ, किन्तु महाराज नन्द ने विलासिता की था पाकर भी कभी अपनी नगरी का ऐसा शृंगार नहीं किया यह श्रेय आपके ही शासन को होगा कि कुसुमपुर सचमु सौन्दर्य का कुसुम बन सका।

चन्द्रगुप्त : वसुगुप्त ! तुम्हारी प्रशंसा अतिशयोक्तियों से भरी होती है इतनी प्रशंसा सुनकर मुझे कभी–कभी सन्देह होने लगत है।

वसुगुप्त: किस सम्बन्ध में सम्राट ?

चन्द्रगुप्त : जो तुम कहते हो, उसकी यथार्थता में।

वसुगुप्तः सम्राट् परीक्षा करके देख लें। सत्य को सत्य कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं है, सम्राट् ! और फिर सम्राट भी तो स्पष्ट–वक्ता हैं। सम्राट स्वयं इस बात को समझते होंगे !

चन्द्रगुप्त : चन्द्रगुप्त रणनीति के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझना चाहता, वसुगुप्त? समाहर्त्ता के नवीन पद पर तुम्हारी नियुक्ति के सम्बन्ध में भी महामंत्री चाणक्य ही समझें। इस सम्बन्ध में उनसे पूछने का मुझे अवकाश ही नहीं मिला।

यशोवर्मन : आचार्य चाणक्य से पूछना बहुत आवश्यक था सम्राट !

वसुगुप्तः यशोवर्मन ! तुम्हें मेरा अपमान करने का कोई अधिकार नहीं। तुम मुझे द्वन्द्व–युद्ध के लिए प्रेरित करते हो।

यशोवर्मन : सम्राट के सेवक और आचार्य महामन्त्री चाणक्य के शिष्य होने के नाते मैं द्वन्द्व–युद्ध के लिये प्रस्तुत हूँ, वसुगुप्त। सम्राट्। मैं द्वन्द्व की आज्ञा चाहता हूँ।

चन्द्रगुप्त : यशोवर्मन। यह राजकक्ष है, समरांगण नहीं। कौमुदी महोत्सव को रक्त का अभिषेक नहीं चाहिए। तुम्हें भी इतने शीघ्र क्षुब्ध नहीं होना चाहिए।

वसुगुप्तः सम्राट मैं क्षमा चाहता हूँ। किन्तु सत्य की रक्षा होनी चाहिये।

चन्द्रगुप्त : अवश्य होगी। और आज कौमुदी महोत्सव में तो सौन्दर्य की ही रक्षा होगी। हाँ, तुम राजनर्त्तकी के सम्बन्ध में क्या कह रहे थे ?

वसुगुप्तः सेवक यही निवेदन कर रहा था सम्राट् ! कि सम्राट् के विश्राम–क्षणों को निद्रालु बनाने के लिये राजनर्त्तकी के नृत्य की आवश्यकता होगी।

चन्द्रगुप्त : हाँ, होनी चाहिए।

वसुगुप्तः तो सम्राट्। मैंने उसकी सज्जा के लिये विशेष प्रबन्ध करा दिया है। वह राजप्रासाद के उत्तर–कक्ष में वेश–भूषा से सुसज्जित है।

चन्द्रगुप्त : मेरी इच्छाओं के पूर्व ही कार्य की आयोजना करने व वसुगुप्त। मैं तुमसे प्रसन्न हूँ: कौमुदी महोत्सव में सदैव साथ रहोगे।

वसुगुप्त: यह मेरा सौभाग्य है, सम्राट्।

चन्द्रगुप्त : इस अवसर पर मुझे तक्षशिला का स्मरण हो आता है, तक्षशिला में जहाँ अट्ठारह विषयों की शिक्षा दी जाती सहस्रों विद्यार्थी थे। वहाँ मेरे एक मित्र थे। तुमने भी उन नाम सुना होगा प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ कात्यायन।

वसुपगुप्त : वे तो व्याकरण–निर्माता पाणिनि के अभ्यास–सिद्ध शि प्रसिद्ध हैं, सम्राट।

चन्द्रगुप्त : हाँ, मैं आयुर्वेद, धनुर्वेद और शल्य सीखता था और कात्य वेद और व्याकरण। पाणिनि के व्याकरण –सूत्र भाषा साहित्य के पूर्व ही चलते थे। उसी प्रकार तुम्हारे कार्य मेरा इच्छा के पूर्व ही हो जाते हैं।

वसुगुप्त: आप मुझे आदर देते हैं, प्रभु।

वसुगुप्त: वहीं आचार्य चाणक्य से मैत्री हुई। नीति–निष्णात अ चाणक्य के समान बुद्धि और अन्तर्दृष्टि में आज सम आर्यावर्त में एक भी व्यक्ति नहीं है। यह मेरा सौभाग्य कि वे मेरे आचार्य और महामन्त्री हैं।

यशोवर्मन : सम्राट। आचार्य चाणक्य की नीति अमर होने की क्षम रखती है। राजनीति के साथ आयुर्वेद आदि में भी आच चाणक्य निपुण हैं। चीन के एक राजकुमार अपनी नेत्र–पी की चिकित्सा कराने के लिए तक्षशिला आए थे। आच चाणक्य ने एक सप्ताह की चिकित्सा में ही उन्हें स्प दृष्टि प्रदान की।

चन्द्रगुप्त : यह मैं जानता हूँ। उनकी राजनीति पर मुग्ध होक तक्षशिला शासक आम्भीक उन्हें तक्षशिला में ही रख

चाहता था। किन्तु उन्होंने वहाँ रहना स्वीकार नहीं किया। उन्होंने मुझे आश्वासन दिया था कि हम दोनों एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना करेंगे।

यशोवर्मन : और सम्राट ! उनका कथन अंत में कितना सत्य निकला !

चन्द्रगुप्त : सत्य क्यों न होता ? मानवीय हृदय को पहिचानने की अंतर्दृष्टि उनमें इतनी अधिक है कि वे एक ही क्षण में उसका सम्पूर्ण कार्यक्रम स्पष्टतः बतला सकते हैं। वे कार्य करने की शैली जानते हैं। अपूर्व शक्ति, अपूर्व साहस और अपूर्व बुद्धि का विचित्र समन्वय उनमें हुआ है।

यशोवर्मन : वे नर–रत्न हैं सम्राट् ! आपके सहयोग से वे राज्य को निष्कंटक बना देंगे।

चन्द्रगुप्त : मैं भी ऐसा ही अनुमान करता हूँ किन्तु कौमुदी महोत्सव के सम्बन्ध में भी मैं आचार्य से परामर्श नहीं कर सका। संग्राम की उलझनों ने अवकाश ही नहीं दिया। किन्तु इसकी सूचना तो उन्हें अवश्य मिल चुकी होगी।

वसुगुप्त: वे आपकी इच्छा का समर्थन ही करेंगे। कौमुदी महोत्सव की उपयोगिता और सामयिकता तो वे अपनी अन्तर्दृष्टि से अवश्य ही देख चुके होंगे। तो अब समय अधिक हो रहा है। सम्राट, राजनर्त्तकी के नृत्य के सम्बन्ध में क्या निर्णय करते हैं ?

चन्द्रगुप्त : उसका नाम क्या है ?

वसुगुप्त: 'अलका' सम्राट् ! वह अनिंद्य सुन्दरी और नृत्य–कला की अद्वितीय साम्राज्ञी है।

चन्द्रगुप्त : मैं पहले उसे देखना चाहूँगा।

वसुगुप्त: अवश्य, सम्राट ! वह राज–प्रासाद के उत्तर–कक्ष में वेश–भूषा से सुसज्जित है। आज्ञा हो तो सम्राट की सेवा में निरीक्षज्ञणार्थ उपस्थित करूँ।

चन्द्रगुप्त : ऐसा ही हो !

वसुगुप्त : जो आज्ञा ! मैं उसे अभी सम्राट की सेवा में उपस्थित करता हूँ।

[वसुगुप्त का प्रसन्नता के साथ प्रस्थान]

चन्द्रगुप्त : अन्तपाल यशोवर्मन ! आज राज़नर्त्तकी अलका का नृत्य देख कर मैं कुसुमपुर की उत्कृष्ट नृत्य–कला का परिचय पा सकूँगा।

यशोवर्मन : मैं सम्राट की सेवा में एक निवेदन करना चाहता हूँ।

चन्द्रगुप्त : निवेदन करो।

यशोवर्मन : विलासी नन्दवंश की राजनीति में यही राजनर्त्तकी अलका है !

चन्द्रगुप्त : यह राजनर्त्तकी अलका ?

यशोवर्मन : हाँ, सम्राट ! राजनर्त्तकी के जीवन का यह सबसे बड़ा अभिशाप है कि वह नन्दवंश के विनाश का कारण बनी और इस तरह वह निर्दोष नहीं कही जा सकती।

चन्द्रगुप्त : निर्दोष ? वह सब प्रकार से दोषी कही जानी चाहिये। गौतम ने अहिल्या को शाप क्यों दिया ? क्या अहिल्या ने अपने सदाचार से अपने सौन्दर्य की रक्षा नहीं की थी ? फिर क्यों उसने इन्द्र को नहीं पहिचाना ? शची का सौभाग्य अप्सराओं को बाँटने वाले इन्द्र की लालसा का भी परिचय चाहिये ? वैसे ही क्या अलका महाराज नन्द को नहीं पहचान सकी ? क्या महाराज नन्द की आँखों में उसके अंगराग की अरुण रेखाएँ विद्युत बन कर नहीं चमक उठीं ? यशोवर्मन ! तुम जानते हो कि आकाश का उल्का प्रकाश से ओतप्रोत रहती है किन्तु जब वह उदित होती है तो समस्त संसार में अमंगल की आशंका क्यों होती है ?

यशोवर्मन : जब सम्राट् ऐसा सोचते हैं तो उसके नृत्य की अनुमति क्यों दे रहे हैं ?

चन्द्रगुप्त : केवल कौमुदी महोत्सव की शोभा–सम्पन्न करने के लिए। और कुसुमपुर की जनता के मन में यह संतोष उत्पन्न करने के लिए कि सम्राट चन्द्रगुप्त ने महाराज नन्द के आश्रितों के साथ सहानुभूति का व्यवहार किया। तुम जानते हो, यशोवर्मन ! महाराज नन्द के लिए जो विष था, उसे मैं अमृत में परिणत करना चाहता हूँ।

यशोवर्मन : सम्राट् तक्षशिला के स्नातक हैं। सम्राट् जानते हैं कि राजनीति में राजनर्त्तकी क्या स्थान है।

चन्द्रगुप्त : वही स्थान जो कृपाण की धार को ढँकने के लिए म्यान का होता है राजनीति रूपी कठोर कृपाण का आतंक छिपाने के लिये राजनर्त्तकी रूपी आवरण आवश्यक है, किन्तु वह आवरण कृपाण की धार को कुण्ठित नहीं करता। राजनीति की परुषता प्रजा की दृष्टि से ओझल रहना आवश्यक है।

यशोवर्मन : सत्य है, सम्राट् !

चन्द्रगुप्त : किन्तु महाराज नन्द की राजनीति राजनर्त्तकी से कुण्ठित हो गई। तलवार की म्यान बनकर रह गई, मैं राजनर्त्तकी को म्यान बना कर रखना चाहता हूँ **(रुककर)** क्या कारण है, मुझे कौमुदी महोत्सव प्रारम्भ की सूचना तूर्य द्वारा नहीं सुन पड़ी ?

[वसुगुप्त का प्रवेश]

वसुगुप्त : सम्राट् ! राजनर्त्तकी सेवा में उपस्थित है।

चन्द्रगुप्त : उपस्थित करो वह मेरे कक्ष के वातावरण को संगीत और नृत्य से मुखरित करे।

वसुगुप्त : जो आज्ञा, सम्राट !

[प्रस्थान]

चन्द्रगुप्त : अन्तपाल यशोवर्मन ! नृत्य और संगीत कौमुदी महोत्सव की वह प्रस्तावना है जिसमें उमंग की रूपरेखा मंगल के रंग में सुसज्जित होती है। नृत्य में ऐसी मनोहर भावनाएँ हैं जिनमें सुख का रहस्य जागता है।

[वसुगुप्त के साथ राजनर्त्तकी अलका का प्रवेश]

अलका : सम्राट् की सेवा में अलका का प्रणाम स्वीकार हो।

[अत्यन्त सुकुमार भाव से प्रणाम करती है।]

चन्द्रगुप्त : **(हाथ उठाकर)** कुसुमपुर की श्री और शोभा की अधिवासिनी बनो। **(यशोवर्मन)** यशोवर्मन ! तुम जा सकते हो।

यशोवर्मन : जो आज्ञा सम्राट ! मेरा निवेदन है कि इस नृत्य समारोह में आचार्य चाणक्य भी सम्मिलित हों।

चन्द्रगुप्त : **(हँस कर)** आचार्य चाणक्य ? राजनीति को कविता से मिलाना आचार्य चाणक्य भी सम्मिलित हों।

चन्द्रगुप्त : **(हँसकर)** आचार्य चाणक्य ? राजनीति को कविता से मिलाना चाहते हो ? मुझे कोई आपत्ति नहीं। यदि चाहो तो उन्हें यहाँ भेज सकते हो। वे भी राजनीति के कुचक्रों से थक गए होंगे, उन्हें भी विश्राम की आवश्यकता होगी। राजनीति का मस्तिष्क आज नृत्य की कविता से हृदय की सहानुभूति प्राप्त करे।

वसुगुप्त: जो आज्ञा, सम्राट !

[प्रस्थान]

चन्द्रगुप्त : राजनीति और कविता ! **(राजनर्त्तकी से)** क्यों राजनर्त्तकी, तुम राजनीति की ताल पर नृत्य कर सकती हो ?

अलका : सम्राट् ! अभी तक तो राजनीति ही मेरे नृत्य की ताल थी। किन्तु मैंने इसकी ओर कभी ध्यान दिया ही नहीं। राजनर्त्तकी का राजनीति से भला क्या सम्बन्ध सम्राट् ? वह तो राज्य की अनुचरी–मात्र है।

चन्द्रगुप्त : (हँसकर) इन्हीं छद्मवेशी शब्दों में अनुचरी स्वामिनी बन जाती है,राजनर्त्तकी! महाराज नन्द तुम पर मोहित थे या महाराज नन्द पर मोहित थीं ?

अलका : सम्राट, मुझे क्षमा करें। सच्ची नारी मोहित नहीं होना चाहती। वह 'आत्मसमर्पण' करना चाहती है। जो नारी मोहित होती है, वह अपने रूप का व्यापार करती है, हृदय का समर्पण नहीं।

चन्द्रगुप्त : तुम किस व्यापार में विश्वास करती हो ? रूप के व्यापार में या हृदय के व्यापार में ?

अलका : हृदय का व्यापार नहीं होता, सम्राट् !

चन्द्रगुप्त : तो हृदय का समर्पण सही !

अलका : उस समर्पण की कोई भाषा नहीं होती सम्राट् ! जिस समर्पण में भाषा होती है, वह व्यापार बन जाता है, और हृदय का व्यापार कभी नहीं होता!

चन्द्रगुप्त : पर महाराज नन्द तो हृदय का व्यापार करते थे ! और उस व्यापार में वे अपना सारा साम्राज्य हार गए। क्या यह बात सत्य नहीं ?

अलका : सत्य है, सम्राट् ! किन्तु पुरुष तो व्यापारी है, वह अपने व्यापार में सब कुछ लुटा सकता है।

चन्द्रगुप्त : पुरुषों के प्रति तुम्हारी बहुत हीन–दृष्टि है, राजनर्त्तकी।

अलका : उसी प्रकार जैसे पुरुषों की नारियों के प्रति हीन–दृष्टि है, सम्राट् ! वे नारी को विलासिता की सामग्री बनाकर छोड़ देते हैं।

चन्द्रगुप्त : किन्तु कोई नारी बलपूर्वक विलासिता की सामग्री नहीं बनाई जा सकती। वह अपनी विजय के लिए विलासिता की सामग्री बनती है, और दोष पुरुषों को देती है !

अलका : सम्राट् ! राजनीति के आचार्य हैं। सेविका राजनीति के पैरों

से कुचली हुई धूल है, सम्राट् ! मैं क्या निवेदन कर सकती हूँ।

चन्द्रगुप्त : किन्तु राजनर्त्तकी ! धूल भी सिर पर चढ़ सकती है।

अलका : हाँ सम्राट् ! जब वह पैरों से ठुकराई जाती है। किन्तु सेविका का यह अधिकार नहीं है।

चन्द्रगुप्त : अधिकार नहीं, राजनर्त्तकी ! यह तो उसकी गति है। गति में अधिकार का आडम्बर नहीं होता, उसमें शक्ति की विद्युत होती है और तुममें वह शक्ति की विद्युत है जिसने आकाश का हृदय चीरते हुए तड़प कर नन्द जैसे विशाल शाल–वृक्ष को धराशायीं कर दिया।

अलका : तब तो मुझे विद्युत की भाँति ही पृथ्वी में विलीन हो जाना चाहिए, सम्राट्!

चन्द्रगुप्त : किन्तु राजनर्त्तकी महासती सीता नहीं बन सकती जो भूमि में विलीन हो जाय। राजनर्त्तकी को राज्य का शृंगार करना पड़ता है।

अलका : यह मेरे जीवन का अभिशाप है, सम्राट् ! ऐसे फूलों का क्या सौन्दर्य जो किसी शव पर बिखेर दिए जाते हैं। आज आपके चरणों पर गिर कर मैं अपने जीवन से मुक्त हो जाऊँगी।

चन्द्रगुप्त : निराशा की बातें मत करो, राजनर्त्तकी ! तुम जानती हो आज कौमुदी महोत्सव है। कुसुमपुर की जनता मेरे साथ आनन्द–विभोर हो जाना चाहती है। तुम्हें मधुर गायन से वातावरण को गुञ्जारित करना है।

अलका : सम्राट् की जो आज्ञा किन्तु आज से मैं राजनर्त्तकी का पद त्याग दूँगी और आपके चरणों की धूल में शयन कर अमर हो जाऊँगी।

चन्द्रगुप्त : राजनर्त्तकी ! तुम्हारा यह वार्त्तालाप महाराज नन्द से नहीं

हो रहा, सैनिक चन्द्रगुप्त से हो रहा है। मुझे अपने चरणों की धूल वीरों की परम्परा के लिए छोड़नी है, राजनर्त्तकियों की परम्परा के लिए नहीं। किन्तु मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। कुसुमपुर के नागरिकों को नृत्य की शिक्षा दी और उसका मंगलाचरण आज कौमुदी महोत्सव में तुम्हारे नृत्य से हो। नृत्य प्रारम्भ करो जिसमें कुसुमपुर का वायुमंडल तुम्हारे नूपुरों के स्वरों का वाहक बन कर कौमुदी महोत्सव का निमंत्रण प्रत्येक दिशा में पहुँचा दे।

वसुगुप्त : अलका ! तुम्हें कुसुमपुर के आदर्श नृत्य का परिचय सम्राट को देना है। इस समय तुम्हें ऐसा नृत्य करना है कि सम्राट् नृत्य–विभोर होकर अपने जीवन के समस्त विषाद को भूल जायँ।

चन्द्रगुप्त : मुझे तो कोई विषाद नहीं है, वसुगुप्त।

वसुगुप्त : सम्राट् को विषाद ही क्या हो सकता है ! सम्राट तो सैनिक हैं। सैनिकों को विषाद कैसा ! मैं तो यही कहना चाहता था कि कुसुमपुर के नागरिकों के हितचिन्तन में लगा हुआ आपका मन जो थका हुआ है............।

चन्द्रगुप्त : ठीक है, राजनर्त्तकी, नृत्य प्रारम्भ हो !

[प्रणाम कर नृत्य प्रारम्भ करती है। कुछ देर नृत्य करने के बाद मधुर कंठ से गीत गाती है।]

आज मधुमय कुसुमों के द्वार–
    द्वार पर है अलि का गुंजन !
सजीली थी मधुवन की गली,
    समीरन धीरे–धीरे चली,
फूल के पास खिल गई कली,
    और नभ से संध्या ने उतर,
लगाया आँखों में अंजन !

आज मधुमय कुसुमों के द्वार
द्वार पर है अलि का गुञ्जन !

[थोड़ी देर तक नृत्य होता रहता है। अन्त में सम्राट मुख से प्रशंसा के शब्द निकलते हैं]

चन्द्रगुप्त : बहुत सुन्दर, राजनर्त्तकी अलका ! तुम जितनी सुन्दर उतना ही सुन्दर तुम्हारा नृत्य भी है। यह लो अप पुरस्कार !

[चन्द्रगुप्त अपने गले से मोतियों की माला उतारते हैं। सह आचार्य चाणक्य का प्रवेश]

चाणक्य : पुरस्कार नहीं दिया जायेगा, सम्राट् !

वसुगुप्त : **(आश्चर्य से रुक कर)** महामंत्री, चाणक्य !

चाणक्य : सम्राट् ! आग बुझ जाने पर भी आग की राख गरम रह है, उसे तुम हाथों में नहीं उठा सकते। तुम इतने थ समय में कैसे मान बैठे कि कुसुमपुर की आग इतनी शी भस्म हो गई है कि उसमें कुसुमों की क्यारियाँ सज जायें?

चन्द्रगुप्त : महामंत्री, चन्द्रगुप्त ने कुसुमों की क्यारियों में नहीं, समरां में अपने जीवन का वैभव देखा है, उसने नूपुरों की झनक में नहीं, तलवारों की झंकार में अपने जीवन का संगी गाया है। आपने यह कैसे समझ लिया कि चन्द्रगुप्त क्षणिक मनोविनोद में उसका समरांगण कुसुम की क्या बन गया ? आपको यह समझना चाहिए कि यह क्षणि विश्राम भविष्य के युद्ध की भूमिका है।

चाणक्य : और सम्राट् चन्द्रगुप्त ! यदि इस क्षणिक विश्राम में जीवन का अन्त हो गया तो ? तुम्हारे भविष्य के वैभव व समरांगण ही कहीं तुम्हारे शव का श्मशान बन गया तो इस विश्राम के क्षण को तुम क्या कहोगे ?

चन्द्रगुप्त : आर्य, विश्राम के क्षणों की सीमा क्या और कितनी है, यह जानने के लिए चन्द्रगुप्त के पास पर्याप्त विवेक है....

चाणक्य : **(बीच ही में)** नहीं है। यही समझ कर मैं अपने साथ सैनिक लाया हूँ **(पुकार कर)** सैनिकों ! राजनर्त्तकी और समाहर्त्ता को अपने नियंत्रण में लो !

[सैनिक नैपथ्य से निकल कर आगे बढ़ते हैं।]

वसुगुप्त : सम्राट् राजमर्यादा भंग हो रही है, रक्षा कीजिए।

चन्द्रगुप्त : महामंत्री, वसुगुप्त अपने नवीन समाहर्ता हैं !

चाणक्य : किन्तु इस समय वे बन्दी हैं। सैनिकों, दोनों को नियंत्रण में लो ! यदि कोई विरोध हो, तो बल–प्रयोग हो !

वसुगुप्त : **(करुण स्वर में)** मैं निर्दोष हूँ, मै निर्दोष हूँ, सम्राट्। महामंत्री ! मैं निर्दोष हूँ।

अलका : **(अत्यन्त करुण स्वर में)** मेरा स्पर्श कोई न करे। मैं नारी हूँ। नारी की मर्यादा सुरक्षित हो ! नारी की मर्यादा सुरक्षित हो ! मैं स्वयं नियंत्रण में होती हूँ। हाय, नारी नियंत्रण में, सदैव नियंत्रण में, जीवन भर नियंत्रण में ! **(विह्वल हो जाती है।)**

चन्द्रगुप्त : **(आगे बढ़ कर)** आर्य चाणक्य ! ....

चाणक्य : कुछ मत कहो, इस समय सम्राट् चन्द्रगुप्त ! चाणक्य अपना कर्त्तव्य अच्छी तरह समझता है। सैनिकों। दोनों को नियंत्रण में लेकर दूसरे कक्ष में ले जाओ।

सैनिक : जो आज्ञा।

[दोनों को बन्दी कर सैनिकों का प्रस्थान]

चन्द्रगुप्त : यह राजमर्यादा की सबसे बड़ी अवहेलना है, महामंत्री ! जिस राजमर्यादा की पूजा हमने रक्त चढ़ा कर की है, उसी राजमर्यादा को तुच्छ सैनिक अपने पैरों की धूल से कलंकित करें ! यह कैसी राजनीति है ? आज कौमुदी महोत्सव के अवसर पर ....

चाणक्य : कौमुदी महोत्सव ?

चन्द्रगुप्त : हाँ, कौमुदी महोत्सव ! क्या आपने मेरी घोषणा नहीं सुनी ?

चाणक्य : वह सुनने योग्य नहीं थी।

चन्द्रगुप्त : आप राजमर्यादा का इतना अपमान कैसे कर रहे हैं ? महामंत्री ! कौमुदी महोत्सव की घोषणा कुसुमपुर में मेरी प्रथम राजघोषणा है।

चाणक्य : वह राजघोषणा प्रारम्भ होने से पूर्व ही समाप्त हो गई।

चन्द्रगुप्त : **(आश्चर्य से)** समाप्त हो गई ? किसने यह साहस किया?

चाणक्य : मैंने, आर्य चाणक्य ने !

चन्द्रगुप्त : इसीलिए मुझे घोषणा का तूर्य नहीं सुन पड़ा ! तो आपने कौमुदी महोत्सव की घोषणा नहीं होने दी।

चाणक्य : नहीं। मैंने ही घोषणा नहीं होने दी।

चन्द्रगुप्त : मैं कारण जानना चाहता हूँ।

चाणक्य : मैं कारण नहीं बतला सकता।

चन्द्रगुप्त : सम्राट् कौन है, चन्द्रगुप्त या चाणक्य ?

चाणक्य : चन्द्रगुप्त।

चन्द्रगुप्त : फिर सम्राट् चन्द्रगुप्त की आज्ञा की अवहेलना क्यों हो रही है।

चाणक्य : इसलिए कि वह आज्ञा किसी मचलने बालक के हठ की तरह है।

चन्द्रगुप्त : फिर भी उसकी रक्षा चाहिए।

चाणक्य : नहीं, बालक आग पकड़ना चाहता है। उसे आग पकड़ने की सुविधा नहीं दी जा सकेगी।

चन्द्रगुप्त : यह तुम्हारा गर्व है, महामंत्री !

चाणक्य : यह तुम्हारा अज्ञान है सम्राट्।

चन्द्रगुप्त : (क्रुद्ध होकर) महामंत्री ! कुसुमपुर की विजय में तुम्हारा हाथ रहा है, तो क्या इतनी छोटी–सी विजय ने ही तुम्हारे गर्व की चिनगारी को फूँक मार कर लपट में परिवर्तित कर दिया ? यह गर्व उस चिता की ज्वाला है जिसमें तुम्हारी राजनीति जल कर भस्म हो सकती है।

चाणक्य : मुझे इसकी चिन्ता नहीं है, सम्राट् ! गर्व मेरे अन्तःकरण का अधिकार है। वह राज्य से अनुशासित नहीं है। किन्तु मैं यह स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि चाणक्य के गर्व की चिनगारी स्वर्ग के राज्य को प्राप्त करके भी लपट नहीं बनेगी। हाँ, अपमान के हल्के झोंके से ही वह दावाग्नि बन कर तुम्हारे वैभव के नन्दन –वन को क्षण भर में भस्म कर सकती है। क्या तुम नन्दवंश के विनाश की पुनरावृत्ति देखना चाहते हो ?

चन्द्रगुप्त : आर्य चाणक्य ! सैनिक चन्द्रगुप्त विलासी नन्द नहीं है जो पतन के गर्त्त के मुख पर खड़ा होकर हल्की–सी राजनीति के धक्के की प्रतीक्षा करे। मौर्य चन्द्रगुप्त हिमाद्रि की तरह सुदृढ़ है जिसे महामंत्री चाणक्य की कुटिल राजनीति रूपी आँधियों के झोंके एक कण भर भी विचलित नहीं कर सकते।

चाणक्य : मौर्य चन्द्रगुप्त ! क्षत्रित्व क्या इतना पतित हो गया कि वह ब्राह्मणत्व पर पदाघात करे ? क्या तुम जानते हो कि मौर्य हिमाद्रि की भाँति सुदृढ़ कैसे हो पाया ? उसकी सुदृढ़ता को धारण करने वाली पृथ्वी इसी ब्राह्मण की राजनीति है। यदि यह शक्ति एक क्षण के लिए अलग हो जाय तो हिमाद्रि इतने वेग से नीचे गिरेगा कि वह अपने साथ समीपवर्ती वृक्षों को भी लेकर समुद्र तल में चला जायगा और तब समुद्र की तरंगें इसी ब्राह्मण के चरणों में लौटने के लिए आवेंगी और यह ब्राह्मण उस ओर देखेगा भी नहीं।

चन्द्रगुप्त : आर्य चाणक्य ! संसार में जितने प्रतापशाली राज्य हुए हैं क्या वे सब महामंत्री चाणक्य के बल पर ही हुए हैं ? और जहाँ महामंत्री चाणक्य नहीं हैं, वहाँ क्या किसी राज्य की स्थापना भी नहीं हुई है ? क्या सारे राज्यों की शक्ति महामंत्री चाणक्य की शक्ति से ही भिक्षा माँग कर संसार में चली है और क्या चन्द्रगुप्त इतना हीन है कि उस शक्ति के बल पर ही वह विजय प्राप्त करता है ? तब जाने दो ऐसी शक्ति को। उसे मैं आज ही दूर करता हूँ। महामंत्री चाणक्य ! तुम महामंत्री पद से मुक्त किये गए।

चाणक्य : मौर्य ! यह तो अपना शस्त्र **(फेंक देते हैं)** यह कलंक इसी समय दूर करता हूँ। राजमंत्री राक्षस की राजनीति के कुचक्र में आने वाले चन्द्रगुप्त ! क्या मैं अपनी शिखा खोल कर विनाश की फिर प्रतिज्ञा करूँ ? जिस ब्राह्मण की शिखा–सर्पिणी ने नन्दवंश को एक ही दंशन में समाप्त कर दिया, क्या मौर्य भी उस सर्पिणी पर हाथ रखना चाहता है। जिस चन्द्रगुप्त को अपना आत्मीय समझ कर कुसुमपुर के सिंहासन पर आरूढ़ कराया उसी चन्द्रगुप्त के विनाश से क्या श्मशान को सुसज्जित करूँ ? वाह रे ब्राह्मणत्व। ब्रह्म–ज्ञान में जीवित रहने वाला आज राज्य के कुचक्रों से लांछित हो रहा है। आज अपने सृष्टि–सागर का विषय मैं ही पी रहा हूँ। किन्तु चन्द्रगुप्त। मुझमें कालकूट को भी पी जाने वाले नीलकंठ की शक्ति है। समझते हो ?

चन्द्रगुप्त : समझता हूँ, चाणक्य ! **(शस्त्र उठाते हुए)** यह शस्त्र अब मेरे अधिकार में हैं। आज मैं समस्त राजनीति अपने बाहु–बल में केन्द्रित कर कुसुमपुर का शासन करूँगा और विद्रोह के सर्पों को जलाने के लिए जनमेजय की भाँति महायज्ञ करूँगा।

चाणक्य : करो, इसी समय से करो वह महायज्ञ और उसमें तुम भी विनष्ट हो जाओ। आज कौमुदी महोत्सव करो और अपने–नवीन समाहर्त्ता और राजनर्तकी के रूप में अपनी मृत्यु को निमन्त्रण दो।

चन्द्रगुप्त : मेरे आनन्दोत्सव से ईर्ष्या करने वाले चाणक्य। तुम यही कहो। ब्राह्मण को इन ऐश्वर्यों से द्वेष होना स्वाभाविक है।

चाणक्य : आत्म–चिन्तन में जो ऐश्वर्य है, क्षत्रिय। वह इन तुच्छ भड़कीले वैभवों में नहीं है, और वह वैभव जो अपने साथ मृत्यु लिये हुए हैं। शत्रु के गुप्तचरों और विष–कन्याओं पर विश्वास करने वाला सम्राट् एक ही पदक्षेप में मृत्यु का आलिंगन उसी भांति करता है जैसे एक ही उछाल में पतिंगा दीप–शिखा के भीतर जलती हुई मृत्यु में भस्म हो जाता है। तुम भी भस्म हो जाओ और अपने वैभव का जला हुआ काला धुआँ अपने पीछे छोड़ जाओ।

चन्द्रगुप्त : अपनी राजनीति में अविश्वासी बने हुए, चाणक्य ! तुम प्रत्येक व्यक्ति को गुप्तचर और प्रत्येक नारी को विषकन्या समझ सकते हो। राज्य–सीमा की रेखा पर रेंगती हुई तुम्हारी आँखों की पुतलियाँ काले कीड़े की तरह केवल निरीह जीवों की हिंसा करना ही जानती हैं। महामंत्री की विशेषता......

चाणक्य : महामन्त्री मत कहो, मौर्य। मैं अब तुम्हारा महामन्त्री नहीं हूँ। मैं भी तुम्हें सम्राट् नहीं कह रहा हूँ। मैं केवल एक ब्राह्मण हूँ। वह ब्राह्मण जिसकी शिखा बहुत दिनों तक खुली रही और वह तभी बाँधी गई जब उसने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार नन्दवंश का विनाश कर दिया। अब उसके सामने केवल दो ही मार्ग हैं। या तो वह पुनः अपनी शिखा खोल कर मौर्य–वंश के विनाश की प्रतिज्ञा करे या क्षितिज की भाँति अपनी बाहुओं को फैलाकर नक्षत्रों के नेत्रों से

विश्वंभरा पृथ्वी को अपनी करुणा और शान्त से सींचे। तब समस्त सृष्टि में उसका राज्य होगा, पशु–पक्षी उसके सहचर होंगे और वायु के झकोरों में झूम कर वह साम–गान करता हुआ तुम्हें क्षमा करेगा।

चन्द्रगुप्त : वह तपोवन नहीं है आर्य ! और चन्द्रगुप्त क्षमा का न तो पात्र है, न अभिलाषी। अब तपोवन के होमकुण्ड में हिंसा करो या कुशकंटक चरने वाले हरिणों को क्षमा करो, किन्तु जाने के पूर्व अपने नवीन समाहर्त्ता वसुगुप्त तथा राजनर्त्तकी अलका पर लगाए हुए लांछन का निराकरण करना होगा। और यदि लांछन असत्य निकला तो राज्य का दण्ड–विधान अपराधी को पहचानता है। यह मेरा अन्तिम आदेश है।

चाणक्य : अपने नवीन महामन्त्री को प्रथम आदेश दो, मौर्य ! मैं तुम्हारे समक्ष सत्य के उद्‌घाटन के लिए बाध्य नहीं हूँ।

चन्द्रगुप्त : जो ब्राह्मण सत्य के उद्‌घाटन को अपना धर्म न समझे, उसे मैं किस संज्ञा से सम्बोधित करूँ ?

चाणक्य : सत्य का उद्‌घाटन मैं अपनी इच्छा से कर सकता हूँ। किन्तु इस उद्‌घाटन के अनन्तर एक क्षण भी यहाँ नहीं ठहर सकूँगा। यह वातावरण अभिशाप बन कर मेरे रोम–रोम में तीव्र प्रतिहिंसा की ज्वाला उत्पन्न कर रहा है।

चन्द्रगुप्त : सर्वप्रथम प्रमाण उपस्थित किया जाय !

चाणक्य : (पुकार कर) सैनिक।

[सैनिक का प्रवेश]

सैनिक : आज्ञा, महाराज।

चाणक्य : समाहर्त्ता वसुगुप्त और राजनर्त्तकी की अलका को उपस्थित करो।

सैनिक : जो आज्ञा

[प्रस्थान]

चाणक्य : चन्द्रगुप्त ! प्रजा के संस्कार जल्दी नहीं छूटते। इस समय भी महाराज नन्द से सहानुभूति रखने वाले व्यक्ति कुसुमपुर में विद्रोह की लपटों के स्फुलिंग बने हुए हैं। राजमन्त्री राक्षस कुसुमपुर के बाहर रह कर भी कुसुमपुर के नागरिकों में अविश्वास के बीजों पर अपनी नीति का जल सींच रहा है। कुसुमपुर के समस्त कार्यों में षड्यन्त्रों का जाल जयकार के छद्मवेश में चारों ओर घूम रहा है और तुम कौमुदी महोत्सव में असावधान होकर विषकन्या का स्पर्श करना चाहते हो ? चन्द्रगुप्त ! मैं अपने निस्पृह नेत्रों से सब कुछ देख रहा हूँ ...... और तुम देख कर भी कौमुदी महोत्सव की शीतलता में हलाहल पान करने जा रहे हो। मैं फिर यही कहना चाहता हूँ .....

[सैनिकों का वसुगुप्त और अलका के साथ प्रवेश]

अच्छा। समाहर्त्ता वसुगुप्त और राजनर्त्तकी अलका। सैनिको। तुम जाकर द्वार पर अपना स्थान ग्रहण करो ! **(सैनिकों का प्रणाम कर प्रस्थान। वसुगुप्त को सम्बोधित करते हुए)** समाहर्त्ता वसुगुप्त। मुझे दुख है कि मैंने तुम्हें सैनिकों के नियंत्रण में रक्खा। मैं जानता हूँ कि तुम सम्राट चन्द्रगुप्त के विश्वास–पात्र नवीन समाहर्त्ता हो।

वसुगुप्त : मैं समाहर्त्ता नहीं हूँ, महामन्त्री। यदि समाहर्त्ता होता तो सम्राट् समाहर्त्ता का अपमान इस भाँति कभी नहीं देख सकते ?

अलका : **(करुण स्वर में)** और नारी का अपमान ! आज तक कुसुमपुर के राजकक्ष में नहीं हुआ। मैं अपमानित हुई हूँ, सम्राट्।

चन्द्रगुप्त : **(दृढ़ता से)** निस्सन्देह। मैं दोनों के अपमान का प्रतिकार करूँगा।

चाणक्य : **(वसुगुप्त से)** सम्राट् से तुमने आश्वासन पा लिया है,

समाहर्त्ता और (राजनर्त्तकी से) राजनर्त्तकी। तुम्हें भी सम्राट के बाहुओं की शीतल छाया प्राप्त हो चुकी है **(वसुगुप्त से)** मैं जानना चाहता हूँ समाहर्त्ता। राजनर्त्तकी से तुम्हारा परिचय कितना पुराना है ?

वसुगुप्त: मैं राजनर्त्तकी का नाम भी नहीं जानता, महामन्त्री ! मुझे तो कौमुदी महोत्सव की घोषणा के कुछ क्षण पूर्व राजनर्त्तकी का परिचय मिला।

चाणक्य: तुम कुसुमपुर के निवासी हो, समाहर्त्ता ?

वसुगुप्त: कुसुमपुर के एक ग्राम अमरावती का निवासी हूँ, मैं वहाँ का अन्तपाल था।

चाणक्य: तो कुसुमपुर में कब से निवास करते हो ?

वसुगुप्त: मैंने कहा न, महामन्त्री। मैं कुसुमपुर का नहीं, अमरावती का निवासी हूँ।

चाणक्य: सम्राट् चन्द्रगुप्त ने तुम्हें कुसुमपुर में पाया या अमरावती में? उन्होंने तुम्हें अपना समाहर्त्ता बनाने में तो कुसुमपुर की नागरिकता को ही ध्यान में रक्खा होगा ?

वसुगुप्त: मैं कुसुमपुर में निवास नहीं करता, महामन्त्री ! मैं अमरावती से कुसुमपुर आया अवश्य करता हूँ।

चाणक्य: वर्ष में कितनी बार आया करते हो ?

वसुगुप्त: मैं कह नहीं सकता।

चाणक्य: **(कठोर स्वर में)** प्रश्न की अवहेलना नहीं हो सकती। ठीक–ठीक उत्तर दो।

वसुगुप्त: महाराज नन्द के प्रमुख उत्सवों में आया करता था।

चाणक्य: गत वर्ष वसंतोत्सव में सम्मिलित हुए थे ? अमरावती के अन्तपाल !

वसुगुप्त: हाँ, महामन्त्री !

चाणक्य : वसंतोत्सव में राजनर्त्तकी अलका ने नृत्य किया था ? तुमने उसे देखा था?

वसुगुप्त : हाँ, महामन्त्री !

चाणक्य : तब तुम अलका के नाम से परिचित हो ?

वसुगुप्त : हाँ, महामन्त्री !

चाणक्य : अभी तुमने कहा कि मैं अलका का नाम भी नहीं जानता। और कहा कि कौमुदी महोत्सव के एक क्षण पूर्व तुम्हें राजनर्त्तकी का परिचय मिला।

वसुगुप्त : मैं राजनीति की बातें प्रकट नहीं किया करता।

चाणक्य : **(हँस कर)** बड़े राजनीतिज्ञ हो ! अच्छा, राजनीति की बातें मत कहो। सीधा उत्तर दो, तुम राजमन्त्री राक्षस के गुप्तचर कब हुए ?

वसुगुप्त : महामन्त्री ! मैं दुष्ट राक्षस को जानता भी नहीं हूँ।

चाणक्य : उसी तरह जिस तरह तुम राजनर्त्तकी को कभी नहीं जानते थे ?

वसुगुप्त : **(चन्द्रगुप्त से)** सम्राट्, ! मेरे सम्मान की रक्षा कीजिए।

चन्द्रगुप्त : मैं रक्षा करूँगा। पहले महामन्त्री आचार्य के प्रश्नों के उत्तर दो।

वसुगुप्त : वसुगुप्त मैं उत्तर देने में असमर्थ हूँ, सम्राट् ! कौमुदी महोत्सव के इस अवसर पर मैंने अधिक आसव पान कर लिया है। इसी कारण मेरे उत्तर ठीक नहीं हैं।

चाणक्य : कोई हानि नहीं, समाहर्त्ता ! मैं तुम्हें और भी आसव पान करने के लिये दूँगा जिससे तुम्हारे लिये यह कौमुदी महोत्सव और भी मंगलमय हो।

वसुगुप्त : मैं अधिक आसव पान करना राजधर्म के प्रतिकूल समझता हूँ, महामन्त्री!

चाणक्य : अभी तुमने कहा कि अधिक आसव पान करने के कारण

तुम ठीक उत्तर नहीं दे सकता। अब कहते हूँ, मैं अधिक आसव पान करना राजधर्म के प्रतिफूल समझते हूँ।

वसुगुप्त : मैं राजनीति के रहस्य आपके समक्ष खोलने में असमर्थ हूँ।

चाणक्य : बार–बार राजनीति ? प्रत्येक प्रश्न में राजनीति ? राज्य का समाहर्त्ता राज्य के महामन्त्री से राजनीति के रहस्य नहीं कहना चाहता ? और आसव पान करने में भी तुम्हारी राजनीति है ! हाँ, तुम्हारी नहीं, मेरी है। समाहर्त्ता ! किन्तु यदि तुम नहीं चाहते तो मैं तुमसे राजनीति के रहस्य खोलने के लिए नहीं कहूँगा। कविता की बातें कहूँगा। कविता की बातें तो कर सकते हो न ? उत्तर दो, जो आसव वन्य कुसुमों की सुगंधि लिये हैं, वह इतना मादक क्यों होता है ?

वसुगुप्त : मैं नहीं जानता, महामन्त्री !

चाणक्य : तुम नहीं जानते ? मैं जानता हूँ। जो आसव वन्य कुसुमों की सुगंधि लिये है, वह इतना मादक इसलिए है कि उसे सुन्दरियाँ अपने हाथों से पान कराती हैं, ऐसी सुन्दरियाँ जिनके नेत्रों में आसव हैं। वे तुम्हारे आसव को देखते हुए अपने नेत्रों का आसव उसमें डाल कर उसे और भी मादक बना देती हैं।

वसुगुप्त : आप तो राजनीति और कविता दोनों में पारंगत हैं, महामन्त्री

चाणक्य : चाणक्य की सूखी शिराओं में कविता कहाँ। किन्तु तुम्हारी इच्छानुसार मैं राजनीति के रहस्यों के बदले तुम्हें कविता देना चाहता हूँ। एक बात पूछूँ? सुन्दरियों के नेत्रों में अधिक मादकता है या अधरों में ?

वसुगुप्त : इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है, महामन्त्री !

चाणक्य : राजनीति के रहस्यों से भी कठिन, समाहर्त्ता ? जिसमें तुम पारंगत हो ? अमरावती के अन्तपाल और महाराज नन्द

के वसंतोत्सव में सम्मिलित होने वाले वसुगुप्त के लिए यह प्रश्न कठिन नहीं है। महाराज नन्द के वसंतोत्सव में 'अनंग-क्रीड़ा का आयोजन हुआ था' ?

वसुगुप्त : हाँ, महामन्त्री !

चाणक्य : और तुम उसमें सम्मिलित हुए थे। तब तो तुम जानते ही होगे कि सुन्दरियों के नेत्रों से अधिक अधरों में मादकता होती है। होती है न समाहर्त्ता ? **(तीव्र स्वर में)** उत्तर दो।

वसुगुप्त : हाँ, महामन्त्री !

चाणक्य : तो जो आसव सुन्दरियाँ अपने अधरों से लगा कर देती हैं उसमें और भी अधिक मादकता होती है ? **(तीव्र स्वर में)** उत्तर दो।

वसुगुप्त : हाँ महामन्त्री !

चाणक्य : अब मुझे तुमसे कोई प्रश्न नहीं पूछना। तुमसे इतने प्रश्न पूछ कर मैंने तुम्हें जो कष्ट दिया है, उसके लिए मैं तुम्हें पुरस्कार देना चाहता हूँ और वह पुरस्कार यह है कि तुम राज़नर्त्तकी अलका के अधरों से स्पर्श किए गए मादक आसव का एक घूँट......

अलका : **(विह्वल होकर)** क्षमा कीजिए, महामन्त्री ! मैं आसव का स्पर्श नहीं करूँगी। आज तक न मैंने आसव पान किया है और न पान कराया है। मैं क्षमा की भीख माँगती हूँ, महामन्त्री !

चाणक्य : कौमुदी महोत्सव में पुरस्कार मिलता है, देवी ! भीख नहीं **(पुकार कर)** सैनिक !

[सैनिक का प्रवेश]

आसव का एक चषक उपस्थित करो।

सैनिक : जो आज्ञा !

[प्रस्थान]

वसुगुप्त : **(विलख कर)** महामन्त्री मेरा जीवन अभिशाप से परिपूर्ण है। मैं राजनर्त्तकी बन कर भी नारी नहीं रह पाई। मैं संसार की सबसे बड़ी विडंबना हूँ मैं पाप की कालिमा हूँ, मैं रौरव की ज्वाला हूँ। मैं........मैं.....

चाणक्य : नहीं देवी ! तुम महाराज नन्द की राजनर्त्तकी हो ! अनिंद्य सुन्दरी, कलापूर्ण नृत्य की सम्राज्ञी ! हाँ, मुझे दुःख है कि तुम्हारा जीवन **(सैनिक चषक लेकर आता है।)** क्या ले आए चषक ? हाँ, मैं अपने साथ ही तो लाया था, आसव और चषक ! लाओ। तुम इसका पान करो, राजनर्त्तकी।

अलका : महामन्त्री। मुझे आसव पान न कराओ, मुझे विषय दे दो। भयानक हलाहल दे दो। उससे मुझे शान्ति मिलेगी। मेरी जिह्वा पर सर्प–दंशन चाहिए, सर्प–दंशन, महामन्त्री।

चाणक्य : सर्प–दंशन तुम्हें नहीं चाहिए, राजनर्त्तकी। किसी और को चाहिए। **(सैनिक से)** सैनिक। बलपूर्वक यह आसव राजनर्त्तकी को पान कराओ। सैनिक राजनर्त्तकी को बलपूर्वक आसव पान कराता है। अनिच्छापूर्ण लड़खड़ाती हुई साँस में मदिरा पान करने की आवाज) बस रहने दो। **(सैनिक राजनर्त्तकी के अधरों से चषट हटाता है।)** अब यह आसव राजनर्त्तकी के अधरों को छूकर और भी मादक बन गया है। अब कौमुदी महोत्सव के समाहर्त्ता वसुगुप्त को उनका पुरस्कार चाहिए। सैनिक ! यह शेष आसव समाहर्त्ता वसुगुप्त पान करेंगे।

वसुगुप्त : सम्राट् । मेरी रक्षा कीजिए। मैं यह आसव पान नहीं करूँगा, नहीं करूँगा।

चाणक्य : सैनिक। वसुगुप्त को शेष आसव बलपूर्वक पान कराओ। **(सैनिक बलपूर्वक आसव पान कराते हैं। घुटते हुए कंठ की आवाज।)**

वसुगुप्त : **(लड़खड़ाते शब्दों में)** ओह। घोर.......हलाहल....आग की ....ज्वाला! सर्प–दंशन............सर्प–दंशन................महामन्त्री, चाणक्य ! तुम ....राज ....मंत्री........ राक्षस.....पर ..... विजयी हुए.......। कौमुदी........महो.....त्......सव......नहीं.....हो. ....सका अलका..........मुझे.....क्षमा..........कौमुदी........महो ....त्.........सव.........कौ........मु........दी.............म.......हो......त्. ......स........व

[प्राण छूट जाते हैं।]

चन्द्रगुप्त : ओ विष–कन्या। राजनर्त्तकी विष–कन्या है। अधरों से स्पर्श किया गया आसव ....हलाहल..............बन गया। समाहर्त्ता......

चाणक्य : समाहर्त्ता अब इस संसार में नहीं है, चन्द्रगुप्त। अलका अब......

अलका : सम्राट् क्षमा कीजिए। महामंत्री, प्राणों की भिक्षा दीजिए। मैं निर्दोष हूँ। मैं निर्दोष हूँ। सम्राट् मैं आपके चरण चूम कर...

[चरणों पर गिरने के लिए आगे बढ़ती है।]

चाणक्य : पीछे हटो। पीछे हटो, चन्द्रगुप्त । **(चन्द्रगुप्त पीछे हटते हैं)** यह तुम्हारे पैरों में अपने दाँत चुभो कर तुम्हें मृत्यु–मुख में ढकेल देगी। यह इसका अन्तिम प्रयोग है। नारी रूप में भयानक सर्पिणी विष–कन्या। राजमंत्री राक्षस ने कौमुदी महोत्सव का प्रस्ताव वसुगुप्त से करा कर असावधान चन्द्रगुप्त को विषकन्या के प्रयोग से नष्ट करने की चाल सोची थी। सैनिकों ! राजनर्त्तकी को बन्दी करो। इसका प्रयोग शत्रु पर ही किया जायेगा। **(सैनिक राजनर्त्तकी को बन्दी करते हैं)** समाहर्त्ता वसुगुप्त राक्षस का गुप्तचर था और राजनर्त्तकी अलका विषकन्या। इस सत्य का उद्घाटन मैंने अपनी इच्छा से किया है। और इस उद्घाटन के

अनन्तर मैं एक क्षण भी नहीं ठहर सकूँगा। मेरा मार्ग छो दो। हटो। तपोवन मेरी प्रतीक्षा कर रहा है। चन्द्रगुप्त अपने विश्वास–पात्र समाहर्त्ता वसुगुप्त का अन्तिम संस्का और कौमुदी महोत्सव का आयोजन दोनों साथ–साथ क और अपना राज्य सम्हालो।

[प्रस्थान]

चन्द्रगुप्त : **(विह्वल स्वरों में)** आर्य चाणक्य। महांत्री चाणक्य। चन्द्रगुप को तुम्हारी आवश्यकता है। महामंत्री चाणक्य के बिन यह राज्य नष्ट हो जायगा, चन्द्रगुप्त नष्ट हो जायगा महामंत्री चाणक्य। कौमुदी महोत्सव नहीं होगा। **(चाणक के पीछे शीघ्रता से जाते** हैं। **उनकी ध्वनि क्रमशः क्षीण होती सुनाई** पड़ती है।) कौमुदी महोत्सव नहीं होगा कौमुदी महोत्सव नहीं होगा। ।..........कौमुदी महोत्स नहीं होगा। !!!

□□□

स्ट्राइक

—भुवनेश्वर प्रसाद

पात्र-परिचय

पहला दृश्य

पुरुष (श्रीचन्द)

स्त्री

दूसरा दृश्य

तीन पुरुष

एक युवक

पुरुष (श्रीचन्द)

तीसरा दृश्य

पहले दृश्य का पुरुष

दूसरे दृश्य का युवक

— पहला दृश्य —

[एक मध्यवर्ग के बँगले का खाने का कमरा, जो बरामदे में एक तरफ परदा डालकर बना लिया गया है। एक बड़ा–सा साइड टेबिल जिस पर चीनी के बर्तन, प्लेट, प्याले नुमायशी ढंग से रखे हैं; पास एक छोटी मेज़ पर फोर्स, क्वाकर ओट्स, पाल्सन बटर और अचार के दो अमृतबान सजे हैं। खाने की मेज़ अण्डाकार है, जिसके चारों तरफ चार कुर्सियाँ पड़ी हैं। दो पर एक स्त्री और पुरुष बैठे हैं। पुरुष; स्त्री कुछ बोले तो पता चले, कम–से–कम दस मिनट से खामोश तीसरे पहर की चाय पी जा रही है।]

स्त्री : **(चाय का प्याला घुमाते हुए)** तो सरदार साहब बहुत चौंके?

पुरुष : **(अनमना)** हूँ....

स्त्री : **(कुछ कहने के लिए साँस भर कर रह जाती है।)**

पुरुष : तो आज नौकर दोनों छुट्टी ले गये हैं....।

स्त्री : **(दो घूँट चाय पीकर रूमाल से ओंठ पोंछती हुई)** सरदार साहब की डाइरेक्टरों में तो खूब चलती है....

पुरुष : **(हास्यास्पद उत्साह से)** यह ! यही तो इन कम्बख्तों को मिटा देता है। यह समझते हैं कि बहुमत इन्हें गदहे से बछड़ा बना देगा ! कमबख्त यह नहीं समझते कि अब बहुमत के माने ही बदल गये हैं। बहुमत बहुत थोड़े से बेज़ार, अधमरे केचुओं का नाम थोड़े ही है ! वह शक्ति, दुनिया को हिला देने वाली शक्ति का नाम है और वह हमेशा एक आदमी एक....आदमी में होती है।

[स्त्री चुपचाप चाय उँड़ेलती है और दूध डालकर ध्यान से प्याले देख रही है। पुरुष रोटी पर बेरहमी से मक्खन लगा रहा है और कुछ देर खामोशी–सी हो जाती है।]

पुरुष : सरदार साहब, राजा साहब, बाबू साहब, सबके साथ यही दिक्कत है। कम्बख्त जीवन की कला नहीं जानते, म्रियमाण से निहत्थे पाजियों की तरह यह मौत तक खिसकते जाते हैं। जब उन्होंने देखा कि मैं उनसे भीख नहीं माँगता, उनके तलवे नहीं सहलाता, गृह नहीं बनाता, षड्यन्त्र नहीं करता तो मुँह बा कर रह गये; जी हाँ, मुँह बा कर रह गये ! **(प्याला रख कर हँसता है)** यह कुछ बूझते–समझते तो हैं नहीं। जब कभी इनके ठोकर लगती है, तो बस खड़े होकर मुँह बा देते हैं। **(आवाज़ धीमी करता है)** लेकिन कपड़ों के नीचे यह सब इज्ज़तदार मोटे घुड़मुँहे गधे हैं गधे ! हाँ, व्यवस्थित समाज में इनका लाभ ज़रूर है–यह ठोकरें खूब झेल लेते हैं। डिवीडेन्ड कम हुआ, इनके हाथ–पाँव फूल गये; किसी कालिज के चिबिल्ले ने किताबी अँगरेज़ी में स्ट्राइक की धमकी दे दी, इनके हाथ–पाँव फूल गये, यह बौखला गये। **(हाथ को नाटकीय ढंग से हिलाते हुए)** मैंने साफ एलान कर दिया कि मैं तीन साल तक कोई डेवीडेन्ड नहीं काटूँगा, अँगूठा कर लो मेरा।

[भद्दी तौर से अँगूठा दिखाता है]

[स्त्री चाय खत्म करके घड़ी की तरफ देखती है। और भँवों में कुछ घुसपुसाती है, पुरुष बेचारा क्या समझे। वह एकाग्र खड़ा रहता है। कमरे में फिर निस्तब्धता छा जाती है।]

पुरुष : **(ऊबा सा)** तो आज नौकर दोनों गायब ! मेम साहब ने चाय बनाई है, पर शाम को क्या होगा ? मेरी तो मीटिंग शायद आठ पर खत्म होगी।

स्त्री : **(रूमाल में उँगलियाँ मलते)** मैं....मैं **(सहसा)** तो ज़ा रही हूँ।

पुरुष : कहाँ जा रही हो ? कहाँ ?

स्त्री : **(बाहर की तरफ रूमाल हिलाते हुए)** वहाँ ?

पुरुष : **(बाहर की तरफ देखता है)** वहाँ ? बाज़ार, शॉपिंग के लिए?

स्त्री : नहीं, मैं तो लखनऊ जा रही हूँ आखिरी जी० आई० पी० से लौट आऊँगी।

पुरुष : **(अपना आश्चर्य भरसक छिपाते हुए)** लखनऊ, जी० आई० पी०, आखिर क्यों ?

स्त्री : **(चाय खत्म कर चुकी है)** कुछ नहीं, ऐसे ही घूमने। सरदार साहब की बीबी हैं, मिसेज़ निहाल हैं, मैं हूँ, मिसेज़ मित्तर हैं—उन्हीं को कुछ काम है, न जाने रेडियो लेने जा रही हैं क्या ?

पुरुष : **(उँगली पोंछ रहा है)** तो यह कहो, **(रुककर)** लेकिन कार क्यों नहीं ले जाती ?

स्त्री : नहीं कार....कार नहीं। ज्यादा से ज्यादा जी० आई० पी० से लौट आयँगे। वही शायद आखिरी गाड़ी है।

पुरुष : **(जेब से सोने की जेब घड़ी निकाल कर और उसे बास्केट पर पोंछकर)** तो जी० आई० पी० यहाँ आती है सवा दस पर, तुम यहाँ दस पचीस पर आ जाओगी। कार मैं पम्प पर छोड़ दूँगा—अरे, मिलखीराम के पेट्रोल पम्प पर। खाने के लिए यह करना कि मैं कार में टिफिन कैरियर रख लूंगा, तुम स्टेशन से सालन वगैरा ले आना, न होगा रोटियाँ यहीं बन जायेंगी। **(जेब में घड़ी रख लेता है और जेब टटोल कर सस्ता सिगरेट केस निकालता है और एक सिगरेट जलाता है, धुआँ छोड़ते हुए)** अब सरदार साहब के मिजाज़ ठिकाने आ जायँगे। कोई उसूल नहीं, कोई हौसला नहीं, भला इसे ज़िंदगी कहते हैं ?

स्त्री : तो जी० आई० पी० यहाँ साढ़े दस पर आती है ?

पुरुष : **(फिर घड़ी निकाल लेता है और उसे पोंछता है।)** नहीं सवा दस पर। और जी० आई० पी० की गाड़ियाँ लेट नहीं होतीं—यह ई० आई० आर० नहीं है। **(जैसे कोई आदमी अपनी ही चीज़ का बखान कर रहा हो।)** दुनिया का

भविष्य उचित समय पर उचित काम करने वालों के हाथ में है—दुनिया की सारी दौलत, सारा आराम, सारा जस उसका है जो अपनी जगह पर कायम है और काम का जो छोटा हिस्सा उसका है उसे मशीन की तरह पूरा कर रहा है। अमरीका का एक बहुत बड़ा लेखक है बरनार्ड शॉ, उसने कहा है....

स्त्री : **(सहसा ऊबी सी)** मिसेज़ निहाल ने कहा तो था कि वह अपनी कार भेजेंगी। तुम्हें मीटिंग में कब जाना है ?

पुरुष : **(चौंक कर घड़ी की तरफ देखता है)** साढ़े चार ! सो लो मैं चला **(गुनगुनाता है)** चार बजकर सत्रह—तीन या चार मिनट मुझे ड्यूक कम्पनी में लगेंगे, चार—इक्कीस—खैर, तो चलो तुम्हें पिन्डी के यहाँ छोड़ दूँगा; वहाँ से—या आओ निहाल के यहाँ तक, दो मिनट की ही तो बात है।

स्त्री : **(स्त्री अँगड़ाई लेते हुए)** अच्छा ? **(खड़ी हो जाती है)** यही साड़ी पहने रहें या दूसरी पहनलें ....

[मुंड़ कर साड़ी देख रही है]

पुरुष : **(सिगरेट दो तीन बार चूस कर फेंकते हुए)** जैसा तुम्हारा जी चाहे। लेकिन तुम्हें मेरे सर की कसम, बतला दो लखनऊ में क्या है ?

स्त्री : **(बरबस मुस्कराती है)** लखनऊ में ? बहुत सी चीज़ें हैं—छोटा— बड़ा इमामबाड़ा, चिड़ियाघर, हज़रतगंज, अमीना...

पुरुष : नहीं, मैं पूछता हूँ, आज शाम को कोई खास बात ?

स्त्री : **(जाते हुए)** आज शाम को खास बात ? कोई खास बात नहीं है।

पुरुष : **(जैसे एक बड़ी मुहिम के लिए तैयार होते हुए)** यहाँ आओ, यहाँ बैठो। **(स्त्री घूम कर खड़ी हो जाती है)** यहाँ बैठो, मैं देखता हूँ, तुम कुछ दिनों से ऐसी हो रही हो। मैं जानता हूँ, तुम्हारी यहाँ तबियत नहीं बहलती पर छुट्टियों में निर्मल आ जायगा, मोनी भी शायद यहीं आवे, तुम्हें मालूम हुआ,

मोनी अबकी बी० ए० में फर्स्ट रही। लेकिन हाँ, बताओ यह तुम्हें हुआ क्या है ?

स्त्री : होता क्या ? कुछ नहीं हुआ; तुम अगर मेरी तबियत का एक खाका..बनाओ तो लकीर वहाँ....वहाँ बिजली तक पहुँच जाए।

पुरुष : **(उत्साहित होकर)** हाँ, लेकिन फिर यह बेताबी क्यों है ? देखो आदमी के सामने सब से बड़ी समस्या यह है कि वह अपनी बची–खुची शक्ति किस तरह काम में ले आये। आदिम जंगलीपन से लेकर आज तक की सभ्यता तक जो कुछ भी आदमी ने अपने को दुखी या सुखी बनाने के लिए किया है, वह इस शक्ति को काम में लाने के लिए। फिर दुःख या सुख तो इतनी ठोस चीज़ें हैं कि एक दिन तुम देखोगी कि यह शीशियों में बिका करेगी, शीशियों में ! मुझे इन टिसुये बहाने वालों से नफरत है, सख़्त नफरत ! यह सिर्फ हरैले ही नहीं हैं, यह तो अपनी हार के गीत गाते हैं, नारे लगाते हैं।

स्त्री : अच्छा उठो, फिर तुम मुझे कार पर न पहुँचाओगे ?

पुरुष : **(फिर घड़ी निकालता है और उसे पोंछता है)** असम्भव ! तुम अब मिसेज़ निहाल का इंतज़ार करो।

[जल्दी से भीतर चला जाता है, स्त्री वहीं बाहर की तरफ घूरती हुई बैठी रहती है। थोड़ी देर में पुरुष भीतर से आता है, बगल में पुराना फेल्ट हैट दाबे, हाथ के छोटे डण्डे को रूमाल से पोंछ रहा है।]

पुरुष : सवा दस पर तुम स्टेशन आ जाओगी, वहाँ से मिलखीराम तक का रास्ता है पाँच मिनट का, दस बीस, यानी साढ़े दस तक तुम यहाँ होगी, यानी दस चालीस तक हम तुम यहीं इसी टेबुल पर डिनर के लिए बैठे होंगे। मैं स्टेशन आ जाता, लेकिन मिस मित्तर। तुम व्यर्थ चलोगी। **(भद्दी हँसी हँसता है, स्त्री पर जैसे इसका कोई असर नहीं होता)** अच्छा चीरियो!

[सीढ़ियों पर से तेज़ी से उतरता हुआ चला जाता है। स्त्री वैसे ही बैठी रहती है, फिर अनमनी भीतर उठकर चल देती है। स्टेज पर एकबारगी अन्धकार हो जाता है। बीच में दो बार रोशनी होती है जिसमें पूरे सीन में खाली मेज़ और कुर्सियां दिखलाई देती हैं। घड़ी–जिसमें साढ़े आठ बजा है फिर नौ।]

—— दूसरा दृश्य ——

[एक मध्यवर्ग क्लब का कमरा, तेज़ तीखी रोशनी हो रही है। मेज़ों पर ताश और भरी हुई एशस्ट्रे बिखरी हैं, कुर्सियाँ भी अनेक चारों तरफ तितर–बितर पड़ी हैं। कोने में एक बड़ी सी फ्रेम विन्डो (खिड़की) के सामने सोफों पर तीन आदमी बैठे हैं। सीन में सिर्फ उनकी पीठें दिखाई दे रही हैं। पास ही एक कुर्सी पर सामने की एक छोटी मेज़ पर सुरुचि से कपड़े पहने एक युवक बराबर ताश फेंट रहा है। खिड़की के फ्रेम में तारों में खिला हुआ आकाश तस्वीर की तरह जड़ा हुआ है। दीवार की बड़ी घड़ी पौने नौ बजा रही है। कमरे में सब खामोश हैं, पर निस्तब्धता नहीं है।]

पहला आदमी : न मालूम मैं यह मनहूस ब्रिज का खेल क्यों खेलता हूँ?
[आवाज़ वृद्ध सी है।]

दूसरा : (जम्हाई लेता हुआ) क्या किया जाय। आओ कोई और झंडा ऊँचा करें।

तीसरा : यह लोग आते भी तो नहीं। (कुर्सी पर के युवक की तरफ घूमकर) देखो जी, तुम मिश्रित समाज की चर्चा चलाओ...:

[दोनों आदमी घूम कर युवक की तरफ देखते हैं। तीनों आदमी मोटे अधेड़, कीमती कपड़े पहने और अत्यन्त संतुष्ट हैं।]

युवक : (झेंपता सा) मैं कैसे उठ सकता हूँ। हाँ, मेरी पत्नी आती तो मैं ज़रूर ऐसा करता, देखिए उन्हें....।

[तीनों एक बारगी 'हूँ' करते हैं और फिर मुड़ कर बैठ जाते हैं और खामोश हो जाते हैं। युवक फिर ताश फेंटने लगता है।]

पहला : **(जेब से सिगरेट–केस निकालता है और फिर रख लेता है)** चलो भाई, चलें, मुझे तो सुबह से ही काम है।

दूसरा : **(मुड़कर घड़ी देखते हुए)** यह श्रीचन्द बुत्ता दे गया !

पहला : नहीं भाई, कहीं फँस गया होगा। उसके तो मकड़ी की तरह सौ आँखें हैं !

युवक : वह आयेंगे ज़रूर, मेरी तो दावत कर गये हैं।

तीनों : **(मुड़ कर)** अच्छा ? और पट्ठे की पत्नी आज है नहीं !

[सब एक दूसरे की ओर देखते हैं]

युवक : अच्छा, मुझे मालूम होता तो मैं कभी प्रतीक्षा न करता।

पहला : इसे–श्रीचन्द को देखो, जब यह वकालत छोड़ कर व्यापार में आ रहा था, मुझे इसकी सफलता की तनिक भी आशा न थी, पर देखो–आज वह एक कम्पनी का सर्वेसर्वा बन गया है।

[हँसता है]

दूसरा : **(जम्हाई लेता और अँगूठियों वाली उँगली से चुटकियाँ बजाता है।)** मैं तो भाई दिन–ब–दिन मानता जाता हूँ कि भाग्य भी कोई चीज़ है।

[युवक ताश रख कर एकाग्र होकर, इन लोगों की बातें सुनता है।]

तीसरा : **(उठ खड़ा होता है)** आओ भाई, चलो। आइये मिस्टर सहाय, आपको कार पर छोड़ आऊँ। घर तक....

पहला : बैठो न, श्रीचन्द आता ही होगा।

युवक : और आपसे भी तो उन्होंने कार में छोड़ आने के लिए कहा था।

तीसरा : (बैठते हुए) हूँ, हूँ ; तब तो रुकना ही पड़ेगा।

[युवक कोई भी बात शुरू करने का इरादा करता है।]

युवक : आज मेरठ षड़यन्त्र का मामला शुरू हो गया।

तीनों : क्या ? अच्छा !

[तीनों ऐसी बातों की तरफ से उदासीनता दिखलाना चाहते हैं पर कुछ असफल से हो रहे हैं।]

पहला : श्रीचन्द ने इनके बारे में खूब कहा।

[हँसता है। सब उसकी तरफ देखकर सुनना चाहते हैं।]

पहला : **(कोट का कालर ठीक करते हुए)** मेरे साथ कमिश्नर से मिलने....उन्होंने मेरठ की बात चलाई। आप छूटते ही हिन्दुस्तानी में बोले— अरे साहब, इनको तो ऐसे ही छोड़ देना चाहिए, यह तो हम लोगों के खिलौने हैं।

[तीनों फैशनेबल हँसी हँसते हैं, युवक भी उसमें शामिल होता है।]

दूसरा : हर देश, हर सरकार के सामने समस्या सिर्फ यही है कि किस तरह उसके कर कम–से–कम किये जा सकते हैं। आप कर कम कर दीजिये, प्रजा अपने–आप सम्पन्न होगी।

पहला : हम लोगों–सा कोई बेसरोकार आदमी रूस जाकर देखे कि इन शरीफों ने वहाँ क्या कर दिखाया है कि दुनियाभर को रूस के सामने हेय समझते हैं।

तीसरा : यानी, खुदा तक को !

[फिर तीनों ऊबी सी हँसी हँसते हैं। बाहर कुछ खटका–सा होता है। सब लोग बाहर की तरफ देखते हैं। पहले सीन का परिचित पुरुष संतोष और लापरवाही से आता है।]

पुरुष : **(अपना हैट और एक डंडा एक खाली मेज़ पर रखते**

हुए) तो तुम लोग सिर्फ इन्तज़ार कर रहे थे, ब्रिज खत्म कर दिया ?

दूसरा : **(कमरे के बीच में आते हुए)** आज सहाय फिर हार गये?

पुरुष : **(हँसता हुआ)** सहाय, तुम बड़े हरैले हो !

[अब सब अपनी जगहों से उठकर कमरे के बीच में आ गये हैं।]

पहला : जीत तो सब तुम्हारे हिस्से में पड़ी है।

पुरुष : अरे भई, क्या जीत क्या हार। यहाँ तो इसका कभी सपने में भी खयाल नहीं करते। हम तो ईमानदारी से जीना जानते हैं। मैं फिर कहता हूँ, जीवन एक कला है और सबसे बड़ी कला !

तीसरा : **(जम्हाई लेता हुआ)** चलो भई बड़ी देर हो गई। **(सब घड़ी की तरफ देखते हैं। पुरुष फिर अपनी सोने की घड़ी निकालता है और उसे पोंछता है।)** चलो, घर तक छोड़ना पड़ेगा।

[तीनों भीतर जा कर अपना हैट लेते हैं, केवल युवक नंगे सिर है।]

पहला : यह चौकीदार न जाने कहाँ मर जाता है।

दूसरा : मर जाता है ? क्या खूब ? क्या नई पत्नी कर लाया है। ज़रा सोचो, नई पत्नी !

[सब जवानों की तरह हँसते हैं, सिर्फ युवक कुछ झेंपा–झेंपा–सा है और सबसे पीछे बाहर जाता है। बाहर बरामदे में से दो या तीन बार आवाज़ आती है, 'चौकीदार !' फिर मोटरों के स्टार्ट होने की और फिर खामोशी। स्टेज पर अँधेरा हो जाता है, पर बीच में दो या तीन बार रोशनी होती है और एक किसान का–सा बुझा हुआ चेहरा लिये चौकीदार मेज़ झाड़ता और जले हुए सिगरेट बीनता हुआ दिखलाई देता है।]

—— तीसरा दृश्य ——

[पहले सीन के कमरे का बरामदा, लंबा और साधारण से ज़रा सा ऊँचा। खम्भों के पास बड़े–बड़े पार्ट्स रखे हैं, खम्भों पर बेलें भी फैली हैं, दरवाज़े सब बन्द हैं, जिनके सामने तीन चार बेमेल कुर्सियाँ पड़ी हुई हैं। सीढ़ियों पर एक बड़ा झबरा कुत्ता लेटा है। दृश्य के शुरू में कोई आदमी नहीं दिखलाई देता पर तत्काल ही गृहस्वामी और युवक जो क्लब से आ रहे हैं, सीढ़ियों पर चढ़ते दिखलाई देते हैं। कुत्ता सिर उठाकर धीमी जानकारी से गुर्राता है, फिर पूँछ हिलाता हुआ पीछे–पीछे आकर बरामदे में बैठ जाता है। स्टेज पर कम–से–कम रोशनी है।]

पुरुष : (मेहनत से चढ़ते हुए) तो यह कहिये ? रुकिये....

[जेब टटोलता है]

[फिर एकबारगी सीढ़ियों से उतर कर बंगले के पीछे की तरफ जाता है, युवक वहीं खड़ा होकर उसकी ओर उत्सुकता से देखकर मुस्करा रहा है, शीघ्र वह फिर वापस आ जाता है और उतावली से जेब टटोल रहा है।]

पुरुष : अब यह नहीं पता, मेरी पत्नी चाभी मुझे दे गई, या कहीं रख गई। नौकर....मैं कहता हूँ कि मेरी ज़िन्दगी में अगर कोई सुर बेसुरा है तो यह नौकर। छुट्टी–छुट्टी–छुट्टी ! रोज़–रोज़ इनको छुट्टी चाहिए, कम्बख्त यह नहीं जानते....

[युवक सहसा एक कुर्सी खींच कर बैठ जाता है। पुरुष स्विच टटोल कर बत्ती जला देता है और फिर दूसरी कुर्सी पर ठीक युवक के सामने बैठ जाता है।]

पुरुष : **(एकबारगी हँसता हुआ)** अगर स्विच कमरे के भीतर होता तो लुत्फ आ जाता !

युवक : खैर, यहाँ भी आराम से बैठे हैं।

पुरुष : हाँ, हाँ; साढ़े नौ बजा है **(घड़ी निकालता है और उसे पोंछता है)** नौ सत्ताइस, खैर, मेरी पत्नी यहाँ साढ़े दस तक आ जायेगी। खाना वह साथ ही लायगी। **(जम्हांई लेता है)** और कहिये।

युवक : **(उत्साह से)** मुझे कोठी तो खैर मिल गई....।

पुरुष : **(जूते को फटफटाते)** खैर, कोठी–ओठी तो है, आपने यह नहीं बताया कि आपने शादी क्यों नहीं की ?

युवक : **(कठिनता से)** नहीं ही की–नहीं का कोई कारण तो है नहीं।

पुरुष : **(मुस्कराता है)** मैं सच कहता हूँ, मैं आप जवान आदमियों को देखकर कई बार बहुत खुश होता हूँ।

युवक : **(जैसे इसके लिए बिल्कुल तैयार नहीं)** जी हाँ !

[हँसता है]

पुरुष : **(सँभल कर)** नहीं। मैं आपसे दिल्लगी नहीं कर रहा हूँ। आप लोग हमसे एक पीढ़ी आगे हैं, पर अगर आपसे हिसाब माँगा जाय तो आपके पास क्या है ? आप मुझे बतलाइये, आप लोगों ने दुनिया को क्या दिया ? मैं वैज्ञानिक आविष्कारों की बात नहीं करता, उसकी तो एक पूरी स्कीम है जिसमें पीढ़ियों और समाज का कोई दखल ही नहीं है, वह तो प्रकृति धीरे–धीरे अपने आपको पूरा कर रही है। मैं जानता हूँ आप मेरे विचारों को दकियानूसी समझ कर मन–ही–मन हँस रहे हैं; लेकिन भाई जान, आपने अपने नये विचारों से कौन–से तीर मारे हैं; आप बताइये।

युवक : ज़िक्र तो शादी का था ?

पुरुष : हाँ, हाँ शादी को ही लीजिए। आप मानते हैं कि हर एक आदमी को जाति की ज़िन्दगी में दाखिल होना ज़रूरी है। जैसा मैं प्रायः कहता हूँ कि दुनिया साझे की दुकान है और हर एक बालिग आदमी का कर्तव्य है कि उसका साझीदार हो। अगर इसके लिए कोशिश में आप अपनी जान नहीं खपा देते तो आप मनुष्य कहलाने का कोई हक नहीं रखते। **(उत्तेजित होकर)** मैं कहता हूँ, सब पुस्तकें गलत हैं, सब झूठी हैं !

युवक : मैंने तो शादी नहीं की— नहीं की कि मैं शायद कभी भी औरत का दिमाग....।

पुरुष : भाई जान, शादी एक गहरी समस्या है, आप उसके साथ खिलवाड़ नहीं कर सकते। मैं पूछता हूँ, आप एक फैक्टरी में तो हर तरह का विज्ञान, कानून, विशिष्ट ज्ञान लगाते हैं। फिर क्या कारण है कि जीवन को ऐसे परमात्मा के भरोसे छोड़ दिया जाय कि उसमें आदमी की सस्ती और निकम्मी शक्तियाँ ही सिर्फ काम में लाई जायं ! आप कहते हैं मैं औरत को समझ नहीं पाता। जनाब यह सब कोरी बातें हैं ! समझने की क्या ज़रूरत है ? मशीन की एक पुली दूसरी पुली को नापने–जोखने, समझने नहीं जाती है। स्त्री–पुरुष तो जीवन की मशीन के दो पुरज़े हैं–दो !

युवक : यह फैक्टरी और मशीन की एक ही रही ?

पुरुष : नहीं साहब, आप मुझे देखिये, मेरी पहली पत्नी थी। कमबख्त को हमेशा मुझसे शिकायत रही, लेकिन उसकी बीमारी में जब मैं प्रतिक्षण उसके सिरहाने रहा तो मेरा नाम रटती हुई मरी। अब यह मेरी दूसरी पत्नी है। हमारे बच्चे नहीं, यानी इस पत्नी के। हम लोग क्लबों में साथ–साथ नहीं जाते, हफ्ते में एक बार सिनेमा

देखते हैं; पहाड़, जंगल जाने का मेरे पास वक्त नहीं; पर हम लोग बेहद खुश हैं–कभी हम में कोई भेद–भाव हुआ ही नहीं। मैं कहना चाहता था कि हम दोनों ने अपनी–अपनी जगह को समझ लिया है और वहाँ हम लोग अडिग हैं। वह बीमार पड़ती है, मैं डाक्टरों से घर नहीं भर देता, मैं बीमार पड़ता हूँ वह रोती–धोती नहीं ! मैं क्या कहूँ ? मैं जानता हूँ, इस वक्त मेरी पत्नी स्टेशन के बुक स्टाल पर कौन सी किताब देख रही है। मैं जानता हूँ, वह स्टेशन पर गाड़ी से दस मिनट पहले पहुँच जाती है।

युवक : पर मान लीजिए, मशीन का एक पुरज़ा बिगड़ जाए !

पुरुष : **(हँसता हुआ)** तो पुरज़ा बदल डालिए, स्वयं बदल जाइये। किताबें, मैं आपको बताऊँगा, किताबें क्या हैं। मैंने रुई के व्यापार पर एक छोटी सी पुस्तक लिखी, मैंने सब वही बातें लिखीं जो लोग रोज़ सोचते थे और जिनकी चर्चा करते रहते थे। नतीजा यह हुआ कि किताब की धूम मच गई; पर उन्हीं उसूलों को जिनकी मैंने वकालत की, काम में लाने की बात मैं स्वप्न में भी नहीं सोचता।

[पुरुष सहसा यह आशा करके कि युवक कुछ कहेगा, चुप हो जाता है। युवक सिर झुकाये हुए खामोश है। कुत्ता इतना शोरगुल सुनकर पास आकर खड़ा हो गया है। कुछ देर के लिए खामोशी हो जाती है।]

युवक : **(सिर उठाकर)** फैक्टरी, पुरज़ा, वाकई यह खूब रही !

[पुरुष कुछ कहने के लिए तैयार होता है पर सहसा फाटक खटकता है और कुत्ता भौंकते हुए दौड़ता है। वह कुत्ते को बुलाता है और बरामदे के किनारे खड़े होकर ज़ोर से पुकारता है–कौन है ? और फिर कुत्ते को पुकारता है। एक चपरासी हाथ

में बाइसिकिल थामे आता है और सलाम करके जेब में से एक लिफाफा निकाल कर देता है और फिर सलाम करके खड़ा हो जाता है]

पुरुष : क्या है, तुम कौन हो; **(लिफाफा लेकर अपनी घड़ी की चेन के चाकू से उसे खोलता है, रोशनी की तरफ आ जाता है)** ऐं !

चपरासी : मैं निहाल साहब का ड्राइवर हूँ, मेम साहब ने कहलवाया है, वह कल आयेंगी।

पुरुष : **(ख़त पढ़ना छोड़ कर)** कल आयेंगी ? ऐं ! तुझे क्या मालूम....

चपरासी : साब मेम साहब वहाँ रहेंगे, मोटर वापस कर दी, मुझसे कहा....

पुरुष : **(टहलते हुए उतावली से)** और खाना, मकान....और कार मेरी मिलखीराम के पम्प पर पड़ी है।

[चपरासी फिर सलाम करता है और चल देता है, थोड़ी दूर चल के कहता है–]

चपरासी : हजूर, आपका कुत्ता बड़ा पानीदार है। अंगरेज़ी है ?

पुरुष : **(हताश भाव से)** आखिर–आखिर, हूँ....

युवक : **(उठते हुए)** आइये, मेरे होटल में आइये, आपकी फैक्टरी में तो आज स्ट्राइक हो गयी।

पुरुष : मैं कहता हूँ, मेरी कार मिलखीराम के पम्प पर खड़ी है. ...

[फिर खत बत्ती के नीचे ले जाकर पढ़ता है।]

□□□

रीढ़ की हड्डी

—जगदीशचन्द्र माथुर

पात्र-परिचय

उमा	:	लड़की
रामस्वरूप	:	लड़की का पिता
प्रेमा	:	लड़की की माँ
शंकर	:	लड़का
गोपाल प्रसाद	:	लड़के का बाप
रतन	:	नौकर

[मामूली तरह से सजा हुआ एक कमरा। अन्दर के दरवाजे से आते हुए जिन महाशय की पीठ नजर आ रही है वे अधेड़ उम्र के मालूम होते हैं, एक तख्त को पकड़े हुए पीछे की ओर चलते–चलते कमरे में आते हैं। तख्त का दूसरा सिरा उनके नौकर ने पकड़ रखा है।]

बाबू : अबे धीरे–धीरे चल।... अब तख्त को उधर मोड़ दे... उधर. ..बस, बस!

नौकर : बिछा दूँ साब ?

बाबू : **(जरा तेज आवाज में)** और क्या करेगा ? परमात्मा के यहाँ अक्ल बँट रही थी तो तू देर से पहुँचा था क्या ?.... बिछा दूँ साब !....और यह पसीना किसलिए बहाया है?

नौकर : **(तख्त बिछाता है)** ही–ही–ही।

बाबू : हँसता क्यों है ?... अबे, हमने भी जवानी में कसरतें की हैं। कलसों से नहाता था लोटों की तरह। यह तख्त क्या चीज़ है ?...उसे सीधा कर... यों...हाँ बस।..... और सुन, बहूजी से दरी माँग ला, इसके ऊपर बिछाने के लिए। चद्दर भी, कल धोबी के यहाँ से आयी है, वही।

[नौकर जाता है। बाबू साहब इस बीच में मेजपोश ठीक करते हैं। एक झाड़न से गुलदस्ते को साफ़ करते हैं। कुर्सियों पर भी दो–चार हाथ लगाते हैं। सहसा घर की मालकिन प्रेमा आती हैं। गंदुमी रंग, छोटा क़द। चेहरे और आवाज़ से जाहिर होता है, किसी काम में बहुत व्यस्त हैं। उनके पीछे–पीछे भीगी बिल्ली की तरह नौकर आ रहा है– खाली हाथ। बाबू साहब रामस्वरूप दोनों की तरफ़ देख़ने लगते हैं।]

प्रेमा : मैं कहती हूँ तुम्हें इस वक्त धोती की क्या जरूरत पड़ गयी ! एक तो वैसे ही जल्दी–जल्दी में...

राम० : धोती ?

प्रेमा : हाँ, अभी तो बदल कर आये हो, और फिर न जाने किसलिए...

राम० : लेकिन तुमसे धोती माँगी किसने ?

प्रेमा : यही तो कह रहा था रतन।

राम० : क्यों बे रतन, तेरे कानों में डाट लगी है क्या ? मैंने कहा था– धोबी के यहाँ से जो चद्दर आयी है, उसे माँग ला... अब तेरे लिए दूसरा दिमाग कहाँ से लाऊँ। उल्लू कहीं का।

प्रेमा० : अच्छा, जा पूजावाली कोठरी में लकड़ी के बक्स के ऊपर धुले हुए कपड़े रक्खे हैं न ! उन्हीं में से एक चद्दर उठा ला।

रतन : और दरी ?

प्रेमा : दरी यहीं तो रक्खी है, कोने में। वह पड़ी तो है।

राम० : **(दरी उठाते हुए)** और बीबीजी के कमरे में से हारमोनियम उठा ला, और सितार भी।..... जल्दी जा।

[रतन जाता है। पति–पत्नी तख्त पर दरी बिछाते हैं।]

प्रेमा : लेकिन वह तुम्हारी लाड़ली बेटी तो मुँह फुलाये पड़ी है।

राम० : मुँह फुलाये !....और तुम उसकी माँ किस मर्ज़ की दवा हो? जैसे–तैसे करके तो वे लोग पकड़ में आये हैं। अब तुम्हारी बेवकूफी से सारी मेहनत बेकार जाय तो मुझे दोष मत देना।

प्रेमा : तो मैं ही क्या करूँ ? सारे जतन करके तो हार गयी। तुम्हीं ने उसे पढ़ा–लिखाकर इतना सिर चढ़ा रक्खा है। मेरी समझ में तो ये पढ़ाई–लिखाई के जंजाल आते नहीं। अपना जमाना अच्छा था ! 'आ–ई' पढ़ ली, गिनती सीख ली और बहुत हुआ तो 'स्त्री–सुबोधिनी' पढ़ ली। सच पूछो तो स्त्री–सुबोधिनी में ऐसी–ऐसी बातें लिखी हैं– ऐसी बातें कि क्या तुम्हारी बी.ए., एम.ए. की पढ़ाई होगी। और आजकल के तो लच्छन ही अनोखे हैं–

राम० : ग्रामोफोन बाजा होता है न ?

प्रेमा : क्यों ?

राम० : दो तरह का होता है। एक तो आदमी का बनाया हुआ।

उसे एक बार चलाकर जब चाहे तब रोक लो। और दूसरा परमात्मा का बनाया हुआ। रिकार्ड एक बार चढ़ा तो रुकने का नाम नहीं।

प्रेमा : हटो भी। तुम्हें ठिठोली ही सूझती रहती है। यह तो होता नहीं कि उस अपनी उमा को राह पर लाते। अब देर ही कितनी रही है, उन लोगों के आने में।

राम० : तो हुआ क्या ?

प्रेमा : तुम्हीं ने तो कहा था कि जरा ठीक–ठाक करके नीचे लाना। आजकल तो लड़की कितनी ही सुन्दर हो, बिना टीमटाम के भला कौन पूछता है ? इसी मारे मैंने तो पौडर–वौडर उसके सामने रक्खा था। पर उसे तो इन चीजों से न जाने किस जन्म की नफ़रत है। मेरा कहना था कि आँचल में मुँह लपेटकर लेट गयी। भई, मैं बाज आयी तुम्हारी इस लड़की से।

राम० : न जाने कैसा इसका दिमाग है ! वरना आजकल की लड़कियों के सहारे तो पौडर का कारबार चलता है।

प्रेमा : अरे मैंने तो पहले ही कहा था। इंट्रेंस ही पास करा देते– लड़की अपने हाथ रहती, और इतनी परेशानी न उठानी पड़ती ! पर तुम तो.....

राम० : **(बात काटकर)** चुप, चुप।.... **(दरवाजे में झाँकते हुए)** तुम्हें क़तई अपनी जबान पर काबू नहीं है। कल ही यह बता दिया था कि उन लोगों के सामने जिक्र और ढंग से होगा। मगर तुम तो अभी से सब–कुछ उगले देती हो। उनके आने तक तो न ज़ाने क्या हाल करोगी।

प्रेमा : अच्छा बाबा, मैं न बोलूँगी। जैसी तुम्हारी मर्जी हो, करना। बस मुझे तो मेरा काम बता दो।

राम० : तो उमा को जैसे हो तैयार कर लो। न सही पौडर। वैसे कौन बुरी है। पान लेकर भेज देना उसे। और, नाश्ता तो तैयार है न ? **(रतन का आना)** आ गया रतन? .. इधर ला,

इधर। बाजा नीचे रख दे। चद्दर खोल।....पकड़ तो जरा उधर से।

[चद्दर बिछाते हैं]

प्रेमा : नाश्ता तो तैयार है। मिठाई तो वे लोग ज्यादा खायँगे नहीं। कुछ नमकीन चीजें बना दी हैं। फल रक्खे हैं ही। चाय तैयार है और टोस्ट भी। मगर हाँ, मक्खन? मक्खन तो आया ही नहीं।

राम० : क्या कहा ? मक्खन नहीं आया ? तुम्हें भी किस वक्त याद आया है। जानती हो कि मक्खन वाले की दूकान दूर है, पर तुम्हें तो ठीक वक्त पर कोई बात सूझती ही नहीं। अब बताओ, रतन मक्खन लाये कि यहाँ का काम करे। दफ्तर के चपरासी से कहा था आने के लिए सो नखरों के मारे.....

प्रेमा : यहाँ का काम कौन ज्यादा है ? कमरा तो सब ठीक–ठाक है ही। बाजा–सितार आ ही गया। नाश्ता यहाँ बराबर वाले कमरे में ट्रे में रक्खा हुआ है, सो तुम्हें पकड़ा दूँगी। एकाध चीज खुद ले आना। इतनी देर में रतन मक्खन ले ही आयगा। दो आदमी ही तो हैं ?

राम० : हाँ एक तो बाबू गोपालप्रसाद और दूसरा खुद लड़का है। देखो, उमा से कह देना कि जरा करीने से आये। ये लोग जरा ऐसे ही हैं। गुस्सा तो मुझे आता है इनके दकियानूसी ख्यालों पर। खुद पढ़े–लिखे हैं, वकील हैं, सभा–सोसाइटियों में जाते हैं, मगर लड़की चाहते हैं ऐसी कि ज्यादा पढ़ी–लिखी न हो।

प्रेमा : और लड़का ?

राम० : बताया तो था तुम्हें। बाप सेर है तो लड़का सवा सेर। बी. ए–सी. के बाद लखनऊ में ही तो पढ़ता है, मेडिकल कालेज में। कहता है कि शादी का सवाल दूसरा है, तालीम का दूसरा। क्या करूँ मजबूरी है। मतलब अपना

है वरना इन लड़कों और इनके बापों को ऐसी कोरी–कोरी सुनाता कि ये भी.....

रतन : **(जो अब तक दरवाजे के पास चुप खड़ा हुआ था, जल्दी–जल्दी)** बाबू जी, बाबू जी !

राम० : क्या है ?

रतन : कोई आते हैं।

राम० : **(दरवाजे से बाहर झाँककर जल्दी मुँह अन्दर करते हुए)** अरे ए प्रेमा, वे आ भी गये। **(नौकर पर नजर पड़ते ही)** अरे तू यहीं खड़ा है, बेवकूफ। गया नहीं मक्खन लाने ?. ....सब चौपट कर दिया।.............अबे उधर से नहीं, अन्दर के दरवाजे से जा **(नौकर अन्दर आता है)**........... और तुम जल्दी करो प्रेमा। उमा को समझा देना थोड़ा–सा गा देगी।

[प्रेमा जल्दी से अन्दर की तरफ आती है। उसकी धोती जमीन पर रक्खे हुए बाजे से अटक जाती है।]

प्रेमा : उँह। यह बाजा वह नीचे ही रख गया है, कमबख्त।

राम० : तुम जाओ, मैं रखे देता हूँ।......जल्दी।

[प्रेमा जाती है, बाबू रामस्वरूप बाजा उठाकर रखते हैं। किवाड़ों पर दस्तक।]

राम० : हँ–हँ–हँ। आइए, आइए।...हँ–हँ–हँ।

[बाबू गोपाल प्रसाद और उनके लड़के शंकर का आना। आँखों से लोक–चतुराई टपकती है। आवाज से मालूम होता है कि काफी अनुभवी और फ़ितरती महाशय हैं। उनका लड़का कुछ खीस निपोरने वाले नौजवानों में से है। आवाज पतली है और खिसियाहट–भरी। झुकी कमर इनकी खासियत है।]

राम० : **(अपने दोनों हाथ मलते हुए)** हँ–हँ, इधर तशरीफ लाइए, इधर।

[बाबू गोपालप्रसाद बैठते हैं, मगर बेंत गिर पड़ता है।]

राम० : यह बेंत !....लाइए मुझे दीजिए। **(कोने में रख देते हैं। सब बैठते हैं।)** हँ–हँ–... मकान ढूँढ़ने में कुछ तकलीफ तो नहीं हुई !

गोपाल० : **(खखारकर)** नहीं। ताँगे वाला जानता था।... और फिर हमें तो यहाँ आना ही था। रास्ता मिलता कैसे नहीं ?

राम० : हँ–हँ–हँ। यह तो आपकी बड़ी मेहरबानी है। मैंने आपको तकलीफ तो दी...

गोपाल० : अरे नहीं साहब ! जैसा मेरा काम वैसा आपका काम। आखिर लड़के की शादी तो करनी ही है। बल्कि यों कहिए कि मैंने आपके लिए खासी परेशानी कर दी!

राम० : हँ–हँ–हँ ! यह लीजिए, आप तो मुझे काँटों में घसीटने लगे। हम तो आपके– हँ–हँ– सेवक ही हैं– हँ–हँ ! **(थोड़ी देर बाद लड़के की ओर मुखातिब होकर)** और कहिए, शंकर बाबू, कितने दिनों की छुट्टियाँ हैं ?

शंकर : जी, कालिज की तो छुट्टियाँ नहीं हैं। 'वीक एण्ड' में चला आया था।

राम० : तो आपके कोर्स खत्म होने में तो अब साल–भर रहा होगा?

शंकर : जी, यही कोई साल–दो साल।

राम० : साल–दो साल ?

शंकर : हँ–हँ–हँ !.....जी, एकाध साल का 'मार्जिन' रखता हूँ...

गोपाल० : बात यह है कि साहब कि यह शंकर एक साल बीमार हो गया था। क्या बतायें, इन लोगों को इसी उम्र में सारी बीमारियाँ सताती हैं। एक हमारा जमाना था कि स्कूल से आकर दर्जनों कचौड़ियाँ उड़ा जाते थे, मगर फिर जो खाना खाने बैठते तो वैसी–की–वैसी ही भूख !

राम० : कचौड़ियाँ भी तो उस जमाने में पैसे की दो आती थीं।

गोपाल० : जनाब, यह हाल था कि चार पैसे में ढेर–सी मलाई आती थी। और अकेले दो आने की हजम करने की ताकत थी, अकेले ! और अब तो बहुतेरे खेल वगैरह भी होते हैं, स्कूल

में। तब न कोई वॉलीबाल जानता था, न टेनिस, न बैडमिण्टन। बस कभी हॉकी या क्रिकेट कुछ लोग खेला करते थे। मगर मजाल कि कोई कह जाय कि यह लड़का कमजोर है।

[शंकर और रामस्वरूप खीसें निपोरते हैं।]

राम० : जी हाँ, जी हाँ, उस जमाने की बात ही दूसरी थी....हँ–हँ !

गोपाल० : **(जोशीली आवाज में)** और पढ़ाई का यह हाल था कि एक बार कुर्सी पर बैठे कि बारह घंटे की 'सिटिंग' हो गयी, बारह घंटे ! जनाब, मैं सच कहता हूँ कि उस जमाने का मैट्रिक भी वह अंग्रेजी लिखता था फर्राटे की कि आजकल के एम.ए. भी मुकाबिला नहीं कर सकते !

राम० : जी हाँ, जी हाँ ! यह तो है ही।

गोपाल० : माफ़ कीजिएगा बाबू रामस्वरूप, उस जमाने की जब याद आती है, तो अपने को ज़ब्त करना मुश्किल हो जाता है !

राम० : हँ–हँ–हँ।.............जी हाँ वह तो रंगीन जमाना था, रंगीन जमाना ! हँ–हँ–हँ !

[शंकर भी हीं–हीं करता है।]

गोपाल० : **(एक साथ अपनी आवाज और तरीका बदलते हुए)** अच्छा, तो साहब, 'बिजनेस' की बातचीत हो जाय।

राम० : **(चौंककर)** बिज़नेस !–बिजि....**(समझ कर)** ओह..... अच्छा, अच्छा। लेकिन जरा नाश्ता तो कर लीजिए।

[उठते हैं।]

गोपाल० : यह सब आप क्या तक़ल्लुफ करते हैं !

राम० : हँ–हँ–हँ ! तक़ल्लुफ किस बात का। हँ–हँ ! यह तो मेरी बड़ी तक़दीर है कि आप मेरे यहाँ तशरीफ लाये। वरना मैं किस काबिल हूँ। हूँ– हूँ ! ....माफ कीजिएगा जरा। अभी हाजिर हुआ।

[अन्दर जाते हैं।].

गोपाल० : **(थोड़ी देर बाद दबी आवाज में)** आदमी तो भला है। मकान–वकान से हैसियत भी बुरी नहीं मालूम होती। पता चले, लड़की कैसी है।

शंकर : जी......

[कुछ खखारकर इधर–उधर देखता है।]

गोपाल० : क्यों, क्या हुआ।

शंकर : कुछ नहीं।

गोपाल० : झुककर क्यों बैठते हो ? ब्याह तय करने आये हो, कमर सीधी करके बैठो। तुम्हारे दोस्त ठीक कहते हैं कि शंकर की 'बैकबोन'...

[इतने में बाबू रामस्वरूप आते हैं, हाथ में चाय की ट्रे लिये हुए। मेज़ पर रख देते हैं।]

गोपाल० : आखिर आप माने नहीं !

राम० : **(चाय प्याले में डालते हुए)** हँ–हँ–हँ ! आपको विलायती चाय पसन्द है या हिन्दुस्तानी ?

गोपाल० : नहीं–नहीं साहब, मुझे आधा दूध और आधी चाय दीजिए। और जरा चीनी ज्यादा डालिएगा। मुझे तो भई यह नया फैशन पसन्द नहीं। एक तो वैसे ही चाय में पानी काफी होता है, और फिर चीनी भी नाम के लिए डाली जाय तो जायका क्या रहेगा?

स्वाद

राम० : हँ–हँ, कहते तो आप सही हैं।

[प्याला पकड़ाते हैं।]

शंकर : **(खखार कर)** सुना है, सरकार अब ज्यादा चीनी लेने वालों पर 'टैक्स' लगायेगी।

गोपाल० : **(चाय पीते हुए)** हूँ। सरकार जो चाहे सो कर ले, पर अगर आमदनी करनी है तो सरकार को बस एक ही टैक्स लगाना चाहिए।

राम० : **(शंकर को प्याला पकड़ाते हुए)** वह क्या ?

गोपाल० : खूबसूरती पर टैक्स ! **(रामस्वरूप और शंकर हँस पड़ते हैं।)** मज़ाक नहीं साहब, यह ऐसा टैक्स है जनाब कि देनेवाले चूँ भी न करेंगे। बस शर्त यह है कि हर एक औरत पर यह छोड़ दिया जाय कि वह अपनी खूबसूरती के 'स्टैन्डर्ड' के

माफिक अपने ऊपर टैक्स तय कर ले। फिर देखिए, सरकार की कैसी आमदनी बढ़ती है।

राम० : **(जोर से हँसते हुए)** वाह–वाह ! खूब सोचा आपने ! वाकई आजकल यह खूबसूरती का सवाल भी बेढब हो गया है। हम लोगों के जमाने में तो यह कभी उठता भी न था। **(तश्तरी गोपालप्रसाद की तरफ बढ़ाते हैं)** लीजिए।

गोपाल० : **(समोसा उठाते हुए)** कभी नहीं, साहब, कभी नहीं।

राम० : **(शंकर की तरफ मुखातिब होकर)** आपका क्या ख्याल है शंकर बाबू ?

शंकर : किस मामले में ?

राम० : यही कि शादी तय करने में खूबसूरती का हिस्सा कितना होना चाहिए।

गोपाल० : **(बीच में ही)** यह बात दूसरी है बाबू रामस्वरूप, मैंने आपसे पहले भी कहा था, लड़की का खूबसूरत होना निहायत जरूरी है। कैसे भी हो, चाहे पाउडर वगैरह लगायें, चाहे वैसे ही। बात यह है कि हम आप मान भी जायँ, मगर घर की औरतें तो राजी नहीं होतीं। आपकी लड़की तो ठीक है?

राम० : जी हाँ, वह तो अभी आप देख लीजिएगा।

गोपाल० : देखना क्या। जब आपसे इतनी बातचीत हो चुकी है, तब तो यह रस्म ही समझिए।

राम० : हँ–हँ, यह तो आपका मेरे ऊपर भारी अहसान हैं। हँ–हँ !

गोपाल० : और जायचा **(जन्मपत्र)** तो मिल ही गया होगा।

राम० : जी, जायचे का मिलना क्या मुश्किल बात है। ठाकुर जी के चरणों में रख दिया। बस, खुद–ब–खुद मिला हुआ समझिए।

गोपाल० : यह ठीक कहा आपने, बिल्कुल ठीक **(थोड़ी देर रुककर)** लेकिन हाँ, यह जो मेरे कानों में भनक पड़ी है, यह तो गलत है न ?

राम० : **(चौंककर)** क्या ?

गोपाल० : यही पढ़ाई–लिखाई के बारे में ! .... जी हाँ, साफ बात है

साहब, हमें ज्यादा पढ़ी–लिखी लड़की नहीं चाहिए। मेम साहब तो रखनी नहीं, कौन भुगतेगा नखरों को। बस हद से हद मैट्रिक पास होनी चाहिए...... क्यों शंकर ?

शंकर : जी हाँ, कोई नौकरी तो करानी नहीं।

राम० : नौकरी का तो कोई सवाल ही नहीं उठता।

गोपाल०: और क्या साहब ! देखिए कुछ लोग मुझसे कहते हैं, कि जब आपने अपने लड़कों को बी.ए., एम.ए. तक पढ़ाया है, तब उनकी बहुएँ भी ग्रेजुएट लीजिए। भला पूछिए इन अक्ल के ठेकेदारों से कि क्या लड़कों की पढ़ाई और लड़कियों की पढ़ाई एक बात है। अरे मर्दों का काम है ही पढ़ना और काबिल होना। अगर औरतें भी वही करने लगीं, अंग्रेजी अखबार पढ़ने लगीं और 'पालिटिक्स' वगैरह पर बहस करने लगीं तब तो हो चुकी गृहस्थी। जनाब, मोर के पंख होते हैं, मोरनी के नहीं, शेर के बाल होते हैं, शेरनी के नहीं।

[शंकर भी हँसता है, मगर गोपालप्रसाद गम्भीर हो जाते हैं।]

राम० : जी हाँ, और मर्द के दाढ़ी होती है, औरत के नहीं।...हँ...हँ...हँ....!

गोपाल०: हाँ, हाँ। वह भी सही है। कहने का मतलब यह है कि कुछ बातें दुनिया में ऐसी हैं जो सिर्फ मर्दों के लिए हैं और ऊँची तालीम भी ऐसी ही चीजों में से एक है।

राम० : **(शंकर से)** चाय और लीजिए।

शंकर : धन्यवाद। पी चुका।

राम० : **(गोपालप्रसाद से)** आप ?

गोपाल०: बस साहब, अब तो खत्म ही कीजिए।

राम० : आपने तो कुछ खाया ही नहीं। चाय के साथ 'टोस्ट' नहीं थे। क्या बतायें, वह मक्खन–

गोपाल०: नाश्ता ही तो करना था साहब, कोई पेट तो भरना था नहीं, और फिर टोस्ट–वोस्ट मैं खाता भी नहीं।

राम० : हँ...हँ.। **(मेज को एक तरफ सरका देते हैं। फिर अन्दर के दरवाजे की तरफ मुँह कर जरा जोर से)** अरे, जरा पान भिजवा देना..!..सिगरेट मँगवाऊँ?

गोपाल० : जी नहीं।

[पान की तश्तरी हाथों में लिये उमा आती है। सादगी के कपड़े। गर्दन झुकी हुई। बाबू गोपालप्रसाद आँखें गड़ाकर और शंकर आँखें छिपाकर उसे ताक रहे हैं।]

राम० : हँ.....हँ....! यही, हँ...हँ, आपकी लड़की है। लाओ बेटी पान मुझे दो।

[उमा पान की तश्तरी अपने पिता को देती है। उस समय उसका चेहरा ऊपर को उठ जाता है और नाक पर रखा हुआ सोने की रिम वाला चश्मा दीखता है। बाप–बेटे चौंक उठते हैं।]

शंकर और
गोपाल० : **(एक साथ)** चश्मा !

राम० : **(जरा सकपकाकर)** जी, वह तो......पिछले महीने में इसकी आँखें दुखनी आ गयी थीं, सो कुछ दिनों के लिए चश्मा लगाना पड़ रहा है।

गोपाल० : पढ़ाई–वढ़ाई की वजह से तो नहीं है कुछ ?

राम० : नहीं साहब, वह तो मैंने अर्ज किया न।

गोपाल० : हूँ। (सन्तुष्ट होकर कुछ कोमल स्वर में) बैठो बेटी।

राम० : वहाँ बैठ जाओ उमा, उस तख्त पर, अपने बाजे–वाजे के पास।

[उमा बैठती है।]

गोपाल० : चाल में तो कुछ खराबी है नहीं। चेहरे पर भी छवि है।...... .हाँ, .कुछ गाना–बजाना सीखा है ?

राम० : जी हाँ, सितार भी, और बाजा भी। सुनाओं तो उमा एकाध गीत सितार के साथ।

[उमा सितार उठाती है। थोड़ी देर बाद मीरा का मशहूर

गीत 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई' गाना शुरू कर देती है। स्वर से ज़ाहिर है कि गाने का अच्छा ज्ञान है। उसके स्वर में तल्लीनता आ जाती है, यहाँ तक कि उसका मस्तक उठ जाता है। उसकी आँखें शंकर की झेंपती–सी आँखों से मिल जाती हैं और वह गाते–गाते एक साथ रुक जाती है।]

राम० : क्यों, क्या हुआ ? गाने को पूरा करो उमा।

गोपाल०: नहीं–नहीं साहब, काफी हैं। लड़की आपकी अच्छा गाती है।

[उमा सितार रखकर अन्दर जाने को उठती है।]

गोपाल०: अभी ठहरो बेटी।

राम० : थोड़ा और बैठी रहो, उमा ! (उमा बैठती है।)

गोपाल०: (उमा से) तो तुमने पेंटिंग–वेंटिंग भी.........

उमा : (चुप)

राम० : हाँ, वह तो मैं आपको बताना भूल ही गया। यह जो तस्वीर टँगी हुई है, कुत्ते वाली, इसी ने खींची है और वह उस दीवार पर भी।

गोपाल०: हूँ ! यह तो बहुत अच्छा है। और सिलाई वगैरह ?

राम० : सिलाई तो सारे घर की इसी के जिम्मे रहती है; यहाँ तक कि मेरी कमीजें भी। हँ...हँ...हँ।

गोपाल०: ठीक।.......लेकिन, हाँ बेटी, तुमने कुछ इनाम–विनाम भी जीते हैं?

[उमा चुप। रामस्वरूप इशारे के लिए खाँसते हैं। लेकिन उमा चुप है उसी तरह गर्दन झुकाये। गोपालप्रसाद अधीर हो उठते हैं और रामस्वरूप सकपकाते हैं।]

राम० : जवाब दो, उमा ? **(गोपाल से)** हँ–हँ, जरा शरमाती है, इनाम तो इसने....

गोपाल०: **(जरा रूखी आवाज में)** जरा इसे भी तो मुँह खोलना चाहिए।

राम० : उमा, देखो, आप क्या कह रहे हैं। जवाब दो न।

उमा : **(हल्की लेकिन मजबूत आवाज में)** क्या जवाब दूँ बाबू जी! ज़ब कुर्सी–मेज बिकती है तब दुकानदार कुर्सी–मेज से कुछ नहीं पूछता, सिर्फ खरीददार को दिखला देता है। पसन्द आ गयी तो अच्छा है, वरना.....

राम० : **(चौंककर खड़े हो ज़ाते हैं)** उमा, उमा !

उमा : अब मुझे कह लेने दीजिए बाबूजी।... ये जो महाशय मेरे खरीददार बनकर आये हैं, इनसे जरा पूछिए कि क्या लड़कियों के दिल नहीं होता ? क्या उनके चोट नहीं लगती? क्या वे बस भेड़–बकरियाँ हैं, जिन्हें कसाई अच्छी तरह देख–भालकर खरीदते हैं ?

गोपाल०: **(ताव में आकर)** बाबू रामस्वरूप, आपने मेरी इज्जत उतारने के लिए मुझे यहाँ बुलाया था ?

उमा : **(तेज आवाज में)** जी हाँ, और हमारी बेइज्जती नहीं होती जो आप इतनी देर से नाप–तोल कर रहे हैं? और जरा अपने इन साहबजादे से पूछिए कि अभी पिछली फरवरी में ये लड़कियों के होस्टल के इर्द–गिर्द क्यों घूम रहे थे, और वहाँ से कैसे भगाये गये थे !

शंकर : बाबू जी, चलिए।

गोपाल०: लड़कियों के होस्टल में ?....क्या तुम कालेज में पढ़ी हो ?

[रामस्वरूप चुप !]

उमा : जी हाँ, मैं कालेज में पढ़ी हूँ। मैंने बी.ए. पास किया है। कोई पाप नहीं किया, कोई चोरी नहीं की, और न आपके पुत्र की तरह ताक–झाँककर कायरता दिखायी है। मुझे अपनी इज्जत– अपने मान का ख्याल तो है। लेकिन इनसे पूछिए कि ये किस तरह नौकरानी के पैरों पड़कर अपना मुँह छिपाकर भागे थे।

राम० : उमा, उमा ?

गोपाल०: **(खड़े होकर गुस्से में)** बस हो चुका। बाबू रामस्वरूप, आपने मेरे साथ दगा किया। आपकी लड़की बी.ए. पास है, और

आपने मुझसे कहा था कि सिर्फ मैट्रिक तक पढ़ी है। लाइए मेरी छड़ी कहाँ है। मैं चलता हूँ। **(छड़ी ढूँढ़कर उठाते हैं।)** बी.ए. पास ? उफ्फोह ! गज़ब हो जाता ! झूठ का भी कुछ ठिकाना है। आओ बेटे, चलो....

[दरवाजे की ओर बढ़ते हैं।]

उमा : जी हाँ, जाइए, जरूर चले जाइए। लेकिन घर जाकर जरा यह पता लगाइएगा कि आपके लाड़ले बेटे के रीढ़ की हड्डी भी है या नहीं– यानी बैकबोन, बैकबोन!

[बाबू गोपालप्रसाद के चेहरे पर बेबसी का गुस्सा है और उनके लड़के के रुलासापन। दोनों बाहर चले जाते हैं। बाबू रामस्वरूप कुर्सी पर धम–से बैठ जाते हैं। उमा सहसा चुप हो जाती है। लेकिन उसकी हँसी सिसकियों में तबदील हो जाती है। प्रेमा का घबराहट की हालत में आना।]

प्रेमा : उमा, उमा....रो रही है ?

[यह सुनकर रामस्वरूप खड़े होते हैं। रतन आता है।]

रतन : जी, मक्खन....

[सब रतन की तरफ देखते हैं और पर्दा गिरता है।]

❑❑❑

मम्मी-ठकुराइन

—डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल

पात्र-परिचय

पुरुष पात्र	स्त्री पात्र
बहादुर	नीता
अजय	मम्मी
मुंशीजी	ठकुराइन
प्रोफेसर साहब	
खन्ना बाबू	
टिकट बाबू	
मूँगफली वाला	
चौधरी कयामत हुसेन	

[मंच पर आमने–सामने, अर्थात् बायें–दायें कोनों पर क्रमशः मम्मी और ठकुराइन के घरों के दरवाजे दीख पड़ रहे हैं। मम्मी के दरवाजे पर पर्दा झूल रहा है। ठकुराइन के खुले दरवाजे पर एक खाट बिछी है, एक खड़ी है।

दोनों घरों के बीच में गली है, जो दूर तक दिखाई पड़ती है। अन्त में एक म्युनिसिपल लैम्पपोस्ट, जिसमें लालटेन जल कर बुझ चुकी है। शेष गली में सादा नीली रोशनी–दूसरे दृश्य में और भी हल्की रोशनी, उस पर धुएँ के फैलने का संकेत।

रानी, मम्मी की साहबजादी नीता, बारह साल की होनहार लड़की, सलवार पहनती है, बालों में सदा दो चोटियाँ रखती है, बड़ी तेज बोलने वाली है, भगवान् बचाये ! बहादुर ठकुराइन का मँझला लड़का है, दस वर्ष का, नेकर पर सदा कुर्ता अथवा बनियाइन पहनता है। अजी, बड़ा क्रोधी है, बड़ी–बड़ी आँखों से जैसे सदा घूरता रहता है। अजय, मम्मी का मझला लड़का, अवस्था से यह भी प्रायः बहादुर का समवयस्क है, पर यह उससे कमजोर है, छोटा है पर इससे क्या, अजय के फैशन और लाड़–प्यार के आगे सब झूठे हैं। बड़ा ही तेज, चंचल और प्यारा दीखता है। मम्मी तो माँ ही हैं अजय की। इनकी न पूछिए, डर लगता है इनके नाज–नखरे से, सदा जैसे असन्तुष्ट–अप्रसन्न रहती हैं। अवस्था चालीस के ऊपर ही है, पर अब भी यह एम० ए० फाइनल जरूर करेंगी। पतली हो जाने के लिए दवा कराने की सोचती हैं।

मुंशीजी ! आय........हाय, दायीं लालटेन बुझते–बुझते रह गयी है। अभी हाल ही में आपरेशन कराके लौटे हैं, दायीं आँख पर हरी पट्‌टी। अवस्था पचास साल, हाथ में छड़ी–धोती पर बढ़िया शेरवानी। ठकुराइन साहब ! अजी, नमस्ते ! देखिए आप बहुत मुसकराती हैं। मैं टिकट बाबू से कह दूँगा, हाँ ! अजी, कोई डर है उनका, ठकुराइन एक बालिश्त बड़ी हैं। प्यार से भी एक घूँसा अगर किसी को मार दें तो, राम कसम गंगाजल। पर हँसती कितना हैं, गोरी–चिट्‌टी और स्वस्थ ! सीधे पल्ले का आँचल जैसे कभी माथे से उतरता ही नहीं। हाय राम........कड़े.........छड़े.........कंगन..........बाली, भरे हाथ की चूड़ियाँ, क्या गजब करती हो ठकुराइन !

प्रोफेसर साहब ! अजी इन्कलाब, जिन्दाबाद। हाँ..................हाँ................ बोलिए...............बोलिए. ....मम्मी बाजार गयी हैं, आपके लिए सूट सिलाने। पैन्ट कसी रखिए, चश्मा न उतारिए.....हाँ पढ़ाइए अब। सही कहते हैं आप प्रोफेसर साहब......तेरी दुनिया में सब कुछ है, मगर प्यार नहीं। प्यार के मतलब इश्क तनहाई।

अहा हा ! खन्ना बाबू ! कितने हसीन आदमी थे यार तुम, लेकिन भाई मोटे क्यों होते जा रहे हो ? अमें, अपनी भाभी से पूछो न। बहुत तंग करती हैं। बैंक की नौकरी, इधर सर पै घर की भरी टोकरी। पर कोई बात नहीं, खैर ! हें हें हें ऽ ऽ ऽ ?

ओ हो टिकट बाबू ! जै राम जी की ! जरा जल्दी में हूँ, फिर मिलूँगा.....डियूटी है डियूटी। सफेद पैंट और काला कोट, माशाल्लाह, कभी धुला डालिए ठाकुर साहब! अजी टिकट बाबू कहो, भड़काओ नहीं

मुझे, ताव आ जाता है, हाँ। अच्छा–अच्छा चुप रहो भाई, इधर देखो अब पर्दा उठ रहा है। मार्च की एक शाम, जो रात बन रही है।

क्षण भर के लिए मंच सूना है, पृष्ठभूमि में लड़कों का कोलाहल। फिर सामने गली में रोते हुए अजय का प्रवेश, बहादुर पीछे है, जो ताली पीट–पीटकर हँस रहा है।]

नीता : (दरवाजे से निकलती है, गुस्से से लाल) बत्तमीज कहीं के ! (बहादुर के सामने जाकर तन जाती है, जैसे अभी पीट देगी) किसने मारा अजय को ? क्यों मारा तुमने ?

बहादुर : (हँस के रह जाता है।)

नीता : बत्तमीज कहीं के ! जरा भी अकल नहीं। अजय रो रहा है और तुम हँस रहे हो?.........आने दो पापा को।

बहादुर : जब दौड़ नहीं पाते तो यह हम लोगों के संग खेलते क्यों हैं ?

नीता : तू कहीं का लाट साहब है क्या ?

बहादुर : (गुस्से से) हइय ! मुझसे बहुत टिर्र, पिर्र मत कीजियो हाँ ?

नीता : इसकी पैंट और कमीज क्यों खराब कर दी ?

बहादुर : गाँठ में जोर नहीं, खेलने आते हैं ! भकाभक गिरते हैं, और ऊपर से.........पें........पें.........पें।

[उसी क्षण अजय रोते–रोते सहसा बहादुर के ऊपर थूक देता है, बहादुर धड़ाक से उसके गाल पर एक चाँटा जमा देता है। नीता बहादुर को कई बार मारने को होती है, पर बहादुर उसके हाथों को पकड़–पकड़ लेता है, उसी हंगामे में मम्मी निकलती है।]

मम्मी : बस.....बस, खबरदार (बीच में आकर बहादुर को अलग कर देती है) क्यों बहादुर तेरी यह मजाल !.......ओ हो.

....माई गॉड ! मैं तो डेढ़ ही महीने में ऊब गयी इस मुहल्ले से, तंग आ गयी इस गली और पड़ोस से।

नीता : मम्मी ! अजय की कमीज और पैंट की हालत देखिए।

मम्मी : मैं पागल हो जाऊँगी इस पड़ोस में। यह सारे नये धुले कपड़े ! इतनी धुलाई–सिलाई; ये सब क्या जानें !

अजय : मम्मी देखिए, बहादुर ने मुझे इतनी जोर से मारा है कि. ....बत्तमीज कहीं का !

मम्मी : बत्तमीज तू है ! मैंने तुझसे लाख बार माना किया है, तू इन लौंडों के संग कुछ न खेल, पर तू है कि..........।

नीता : मम्मी ! यह बहादुर गन्दी–गन्दी बातें बोलता है।

मम्मी : आने दो आज तुम्हारे पापा को ! आज कोई फैसला होके रहेगा। **(अपने दरवाजे पर आ)** तमाशा बना दिया है ? गली–पड़ोस का दिया हुआ नहीं खाती मैं ! किसकी मजाल है, जो मेरे बच्चों को पीटे।

नीता : ये लौंडे हमारी दीवार पर गन्दी–गन्दी बातें लिखते हैं मम्मी !

मम्मी : जो न हो जाय सब कम है इस कस्बे में। **(रुक कर)** इतने दिनों तक जयपुर में रही, मजाल क्या बच्चे कभी रोये हों, या मुझे तेज बोलना पड़ा हो। लेकिन यहाँ मैं चीख–चीखकर पागल हो जाऊँगी।

नीता : कैसे घूर रहा है बैठा–बैठा यह बहादुर।

मम्मी : मैं खूब जानती हूँ यहाँ रहने का नतीजा। आने दो प्रोफेसर सतसंगी को। वह रहें अकेले यहाँ। यही बड़ी प्यारी थी इस टुटपुजिये कालेज की नौकरी, जो जयपुर के इतने शानदार कालेज को छोड़कर इस गन्दे कस्बे में आये।

अजय : **(बीच ही में मुँह बनाकर)** मम्मी, मैं चुपचाप दौड़ रहा था। बहादुर ने पीछे से लंगी मार कर मुझे गिरा दिया।

नीता : और अभी इसने ऊपर से मारा भी।

मम्मी : **(आवेश में)** क्यों रे बहादुर ! इधर तो आ। क्यों मारा तूने अजय को?

बहादुर : इसने थूका है जो मेरे ऊपर।

अजय, नीता : **(एक स्वर में)** नहीं, नहीं झूठ है मम्मी, बिल्कुल झूठ।

अजय : मम्मी ? यह बड़ा चार सौ बीस है।

मम्मी : चुप रह अजय ?.....क्यों बहादुर ? तूने अजय को लंगी मारकर क्यों गिराया ?

बहादुर : **(गुस्से में)** बुलाऊँ सारे लड़कों को !

अजय : मम्मी ! यहाँ के सब लड़के झुट्ठे हैं।

नीता : सब एक ही थैली के चट्टे—बट्टे हैं। एक गिरोह है इनका मम्मी !

बहादुर : बस, देवता तो तुम्हीं लोग हो।

मम्मी : **(डाँट के स्वर में)** चुप रह ! तमीज से बातें करना सीख!

[तभी अपने दरवाजे से ठकुराइन का प्रवेश, आँचल में गीले हाथ पोंछती हुई।]

ठकुराइन : क्या है रे बहादुर ? चल, घर में चल।

मम्मी : **(जैसे अपने—आप से)** किस्मत फूट गयी यहाँ आकर। दुनिया में बहुत लड़के हैं, लेकिन यहाँ के सबसे निराले हैं। बाप रे बाप, इतनी बुरी—बुरी आदतें। उफ ! मैं तो पक गयी।

ठकुराइन : हमारी वजह से ?

मम्मी : पता नहीं कैसे लोग हैं यहाँ के ! कैसी तहजीब है उनकी, और उनके बच्चों की।

बहादुर : **(सहसा)** बस सिर्फ आप ही लोग लाट साहब के नाती हैं।

ठकुराइन : **(गुस्से से झिटककर)** चुप.....चुप रहता है कि नहीं। यहाँ लड़ने के लिए खड़ा है ? मैं कहूँ कि क्या बात है, मैं तो चौके में थी ? **(हँस पड़ती है)** क्यों रे बहादुर ! तू क्यों खेलता है मम्मी के बच्चे के संग?

बहादुर : कौन जाता है बुलाने इनके बच्चों को। अजय, विजय, नीता–गीता सब तो अपने–आप घुस आते हैं हममें !

मम्मी : **(गुस्से में)** तुम्हारा मतलब है कि मैं दरवाजे पर बच्चों को न टहलने दूँ ?

[गली में मुंशीजी आते दीख पड़ते हैं।]

ठकुराइन : अरे........रे........सुनो तो बहू !

मुंशीजी : **(आकर)** हे जी ठकुराइन, पहले मेरी बात तो सुनो जी! **(ठकुराइन माथा ढककर दरवाजे पर खड़ी हो जाती है)** अजय की मम्मी, तुम भी सुनो।.......जे बात यह है कि इस गली के सारे लड़के तो यहाँ खेल ही नहीं रहे थे। वहाँ बाग में खेल रहे थे, इमली के नीचे और आपके बच्चे खुद वहाँ गये।

मम्मी : **(ताव में)** जी, आपसे कौन पूछ रहा है ? औरतों के बीच में खामखाह बोलने वाले आप कौन होते हैं ? जब यहाँ के मरदों को इतनी तमीज नहीं तो ये बच्चे क्यों न ऐसे हों?

मुंशीजी : अरे........जा जा ! बड़ी तमीजदार आयी है ! नयी नाइन, बाँस का नाहना !

मम्मी : चलो घर में चलो, देखूँगी मैं, हाँ !

[बच्चों सहित प्रस्थान। भीतर से दरवाजा बन्द होता है ।]

मुंशीजी : बड़ी देखी साहबी खूनवालों की........सुनो बहादुर की माँ इनसे जरा दबा न करो बहू। जरा भी दबीं तो ये हावी हो जायेंगे, हाँ।

ठकुराइन : **(हँसती हैं)** बड़ा गुस्सा है मम्मी को ? लेकिन जितना यह गुस्सा झुँझलाहट ऊपर से है, उतना भीतर से नहीं है मुंशी जी !

मुंशीजी : तो भीतर से तो गऊ हैं ?

ठकुराइन : **(हँसकर)** हाँ, बच्चों को लेकर जब यह बोलने लगती हैं

तो सच मैं घबड़ा जाती हूँ। गली–मुहल्ले के, घर–घर के बच्चे हैं, आपस में खेलते हैं, गिरते–रोते हैं चुप हो जाते हैं। पर उनके माँ–बाप कभी कोई बात कान पर नहीं लेते।

बहादुर : **(ताव में)** अपने बच्चों को घर में क्यों नहीं बन्द रखतीं?

ठकुराइन : चुप रह रे! तूफान करेगा क्या ?...............जा भाग यहाँ से....। चल अन्दर।

बहादुर : क्यों जाऊँ ? मैं नहीं जाता, अपने दरवाजे से !

ठकुराइन : मैं कहती हूँ अन्दर जा न !

बहादुर : मैं नहीं जाता ! किसी के बाप का डर पड़ा है कि मैं यहाँ से भागूँ ! नहीं जाता....

ठकुराइन : तेरा नाश्ता ठंडा हो रहा है रे !

[ठकुराइन को हँसी आ जाती है। तब बहादुर भीतर जाता है।]

मुंशीजी : ठीक ही कहता है। आखिर अपने घर से भाग कर कहाँ जाय ? शिव....शिव....। तुम तो घर में रहती हो बहू, मैं सारा दिन अपनी बैठक से देखता रहता हूँ.....! हाय..... हाय.....अजय......विजय, गीता.....नीता। बच्चे हैं कि तुर्कों की फ़ौज है।

ठकुराइन : जरा धीरे बोलो मुंशीजी ! नहीं तो अजय की मम्मी.....

मुंशीजी : ठकुराइन ! यह मम्मी क्या बला है ?

ठकुराइन : बच्चे माँ को मम्मी कहते हैं और प्रोफेसर साहब को पापा कहते हैं।

मुंशीजी : **(हँसी आ जाती है।)** पापा और मम्मी ! राजा कहें किस्सा, रानी खाँय मूँगफली।

ठकुराइन : प्रोफेसर साहब आ रहे हैं मुंशीजी !

[ठकुराइन दरवाजे में चली जाती हैं, मुंशीजी थैली में से बीड़ी निकालकर दागने लगते हैं। प्रोफेसर सतसंगी अपने घर के दरवाजे पर दस्तक देते हैं।]

प्रोफेसर : बेबी...बेबी...अजय....ओ नीता !

[बन्द किवाड़ें खुलती हैं, नीता दिखाई पड़ती है।]

प्रोफेसर : अरे ! इस उमस में तुम लोग इस तरह कमरा बन्द करके पड़े हो।?

नीता : लगता है आज आँधी आयेगी पापा !

प्रोफेसर : मम्मी कहाँ है ?

नीता : उन्हें बहुत जोर का सिर दर्द हो रहा है।

प्रोफेसर : अरे !

[नीता के संग भीतर प्रवेश]

मुंशीजी : बहू ! सुना है मम्मी जी की छोटी बहिन आयी हैं।

ठकुराइन : हाँ, आयी तो हैं !

मुंशीजी : यह तो शायद बड़े एखलाक की हैं, पर्दे में रहती हैं, इनकी तरह डगर–डगर नहीं घूमतीं।

ठकुराइन : बच्चा होनेवाला है, कमजोर बहुत हैं; डाक्टरनी ने बहुत चलना–फिरना मना किया है।

मुंशीजी : ओ हो ! तभी वह मिडवाइफ बहुत चक्कर लगाती है।

ठकुराइन : कितनी उमस है आज ! परसों की तरह फिर तूफान आयेगा क्या ?

मुंशीजी : आँधी आयेगी बहू !

ठकुराइन : पानी भी बरसेगा, ऐसा लगता है।

[अपने दरवाजे से निकलकर मम्मी बड़ी तेजी से बाहर मुड़ती हैं, क्षण भर बाद प्रोफेसर सतसंगी जैसे मम्मी का पीछा करते हुए आते हैं। ठकुराइन अन्दर चली जाती हैं, मुंशीजी गली में मुड़ जाते हैं।]

प्रोफेसर : **(पुकारते आते हैं)** सुनती हो....अजी सुनो, अजय की माँ !

[भीतर से अजय और नीता का प्रवेश]

प्रोफेसर : **(बिगड़कर)** तुम्हारी मौसी जी के पास कौन है ? चलो अन्दर ! नीता तुम जाओ .....जाओ मौसी जी के पास रहो। **(रुककर)** अजय, देखो तुम्हारी मम्मी कहाँ गयी?

अजय : पापा, मुझे बहादुर ने मारा है।

नीता : और उल्टे बहादुर की माँ मम्मी से लड़ने को आमादा थीं।

अजय : पापा, वह जो खूसट बुड्ढा, मंशी है न ! वह भी लड़ने लगा उन्हीं की ओर से।

प्रोफेसर : **(झल्लाते हुए)** अच्छा....अच्छा ! जाओ तुम मम्मी को देखो।

अजय : पापा, सारे लड़के हम लोगों को तंग करते हैं। बुरी–बुरी बातें करते हैं। गन्दी–गन्दी आदतें सिखाते हैं।

प्रोफेसर : मैं कहता हूँ, पहले मम्मी को जाकर देखो।.....नीता, तुम मौसी के पास क्यों नहीं जातीं?

[नीता भीतर लौट जाती है।]

प्रोफेसर : अजय जाओ मम्मी को देखो !

[उसी क्षण मम्मी प्रविष्ट होती हैं।]

मम्मी : क्या करोगे मम्मी का ? मम्मी तो खुद पागल हो गयी !

प्रोफेसर : सुनो तो !

[मम्मी के सामने खड़े हो जाते हैं।]

प्रोफेसर : बहादुर ने आज फिर बच्चों को पीटा है ?....उसकी मां तुमसे लड़ रही थी ?

मम्मी : मेरा सिर न चाटो ! उन्हीं से पूछो जाकर।

प्रोफेसर : आखिर बात क्या हुई ? मैं भी तो जानूँ।

मम्मी : हट जाओ मेरे सामने से ! दर्द के मारे मेरा सर यूं ही फट रहा है।

प्रोफेसर : 'इक्जरशन' पड़ गया तुम पर लगता है !

[मम्मी गुस्से में तनी भीतर चली जाती हैं।]

अजय : पापा, मम्मी मौसी जी के लिए भभूत लेने गयी थीं। बहरैइची जमादार है न पापा।

प्रोफेसर : हां....हां !

[तभी अपने दरवाजे से बहादुर निकलता है।]

प्रोफेसर : क्यों जी बहादुर ! तुमने आज फिर अजय को पीटा है ?

बहादुर : मैं नहीं बोलता आप लोगों से। जाइए जो करना है कर लीजिए मेरा।

प्रोफेसर : तमीज से बातें करना सीखो !

मम्मी : **(भीतर से निकलती हुई)** उस पर क्यों लाल–पीले होते हो ? अपना सर क्यों नहीं पीटते, जो यहाँ आ बसे। तुम्हें तो ठाट से कालेज की नौकरी करनी है न। मरना तो मुझको है इस सड़े मुहल्ले में ! गली में आ बसे हैं, जैसे और कहीं कोई ठिकाना न था।

प्रोफेसर : पर डियर मेरी बात तो सुनो !

मम्मी : तुम रहो यहाँ, मैं कल ही बच्चों को लेकर मेरठ चली जाऊँगी। जब तक वहाँ मेरे मां–बाप हैं, समझूंगी कि तब तक.....

प्रोफेसर : मैं अभी पूछता हूँ बहादुर की माँ से ! इन्हें पता नहीं कि हमारी पोजीशन क्या है ?

मम्मी : खूब जानते हैं हमारी पोजीशन। जिस दिन तुमने मुझे यहाँ ला बसा दिया, उसी वक्त हमारी पोजीशन जाहिर हो गयी। सारी आदतें बच्चों की खराब हो गयीं। गन्दगी–पसन्द हो गये बच्चे। सदा रोनी सूरतें बनाकर घूमने लगे। पढ़ने–लिखने से जी चुराने लगे। **(रुककर)** जयपुर से आज यहाँ कोई हमसे मिलने आये तो वह इन बच्चों को पहचान नहीं सकता कि ये वही बच्चे हैं। **(रो पड़ती है)** मेरी किस्मत फूट गयी !

प्रोफेसर : **(बिगड़ जाते हैं)** क्या समझ रखा है इन लोगों ने हमें। क्यों बहादुर ! ......चलो, इधर तो आओ....सुनो मेरी बात।

बहादुर : सुन तो रहा हूँ !

[एकाएक भीतर से ठकुराइन निकलती हैं।]

ठकुराइन : क्यों रे बहादुर ! तू फिर यहाँ आ गया ?

बहादुर : फिर कहाँ जाऊँ ? कोई डर पड़ा है इन लोगों का क्या?

क्यों जाऊँ मैं यहाँ से। यह मेरा दरवाजा है, किसी के बाप का साझा नहीं है इसमें।

[ठकुराइन बहादुर के सिर पर तमाचा मार देती है।]

ठकुराइन : फिर बोलेगा ? मारते–मारते तेरी.....

बहादुर : **(क्रोध में)** बोलूँगा......बोलूँगा.....हजार बार बोलूँगा, हाँ।

ठकुराइन : लगता है इन लोगों के मारे घर ही छोड़ना पड़ेगा। जैसे दुनियां में इन्हीं को बाल–बच्चे हैं। यही शरीफ हैं; इन्हीं को सारी तमीज है जो बीबी की ओर से लड़ने आये हैं।

प्रोफेसर : सुनो जी ठकुराइन ! हमें तुम लोगों की तरह लड़ने की आदत नहीं। मैं सिर्फ यह कहना चाहता हूँ कि अपने बच्चों को समझा दो और खुद समझ लो कि हमें तुम लोगों से कोई सरोकार नहीं।

ठकुराइन : कौन रखता है सरोकार ! दरवाजे के सामने तुम्हारा घर न पड़ता तो मैं इधर ताकती तक नहीं। जितनी ही इनकी इज्जत करो, उतनी ही.............

[गली में से मुंशीजी निकलते हैं।]

मुंशीजी : मैंने तो पहले ही कहा था बहू तुमसे !

प्रोफेसर : जी तुम कौन हो बीच में बोलने वाले।

मुंशीजी : जी मैं एक आदमी हूँ।

मम्मी : लेकिन आसार नहीं हैं आदमी के !

मुंशीजी : अजी, औरत के तो आसार हैं कि वह भी नहीं।

प्रोफेसर : यही है तुम्हारी तमीज ?

मुंशीजी : क्या ?.........सुनो मास्टर साहब। जरा कायदे से पेश आया करो मुझसे, वरना ताले लगवा दूँगा घर में, हाँ ! मैं टिकट बाबू नहीं!

प्रोफेसर : तेरी यह मजाल !

[गली में से खन्ना बाबू का प्रवेश]

खन्ना : **(पेट पर हाथ फेरते हुए, यह इनकी आदत है, और साथ ही साथ हँसते भी रहते हैं)** क्या है मुंशीजी ? जैरामजीकी प्रोफेसर साहब !

मम्मी : इन्हें देखकर तो मेरा सिर और फटने लगा।
[मम्मी भीतर चली जाती है।]

खन्ना : हम लोगों की सूरत ही ऐसी है, क्या बतायें मुंशीजी ! **(रुक कर)** क्या बात है मास्टर साहब ?

प्रोफेसर : आपसे मतलब ?

खन्ना : क्यों नहीं मास्टर साहब ! हम पड़ोसी जो हैं !.....मुँशीजी, बहादुर, जरा अदब लिहाज रखा करो मास्टर साहब के घर का ! बड़े भाग्य से तो यह हमारे मुहल्ले में आये।

प्रोफेसर : बको मत ! मैं सबकी शरारतें समझता हूँ। मैं अभी जाता हूँ चेयरमैन साहब के पास। अजय जरा मेरी छड़ी और टार्च तो लाना ! **(अजय का प्रस्थान)** क्या समझ रखा है इन लोगों ने ?

खन्ना : हम तो मास्टर साहब आपकी बड़ी इज्जत करते हैं– इलिम कसम। पूछ लीजिए मुहल्ले भर में। यकीन न हो तो मेरी बीबी से पूछ लीजिए।

प्रोफेसर : तुम लोगों की यह मजाल। सारी दुपहरी तुम लोग हमारे घर का मजाक बनाते हो ?.......कोई कहता है मास्टर साहब ने प्रेम–विवाह किया है। कोई कहता है कि मास्टर साहब, ससुर के रुपये–से पढ़े हैं। कोई कहता है, मैंने अपने माँ–बाप को छोड़ दिया है। कोई कहता है, रात को मुझे नींद नहीं आती और मैं शराब पीता हूँ।

मुंशीजी : नहीं जी, मैं तो जानता हूँ आप शायरी करते हैं।

खन्ना : बुरी बात है मुंशीजी !
[उसी समय एक ओर से चौधरी कयामत हुसेन आते हैं।]

चौधरी : **(आते–जाते)** राम....राम! क्या जानें ये लोग किसी पढ़े–लिखे विद्वान को ! क्या जानें कदरदानी ?

खन्ना : चौधरी, मूँगफली के क्या भाव हैं ?

चौधरी : मुहल्ले के लोग तो बस सदा दूसरों के लिये ऐसे ही रहते हैं। कहीं कुछ मिल जाय, ढूँढ़ते ही रहते हैं।

प्रोफेसर : **(पुकार कर)** अजय ! क्या करने लगा भीतर ?

अजय : **(छड़ी टार्च लिए दौड़ा आता है)** लीजिए पापाजी ?

प्रोफेसर : मैं जानता हूँ ऐसे लोगों की दवा। **(जाते–जाते)** अजय, अन्दर चलो, मैं अभी आया।

[**प्रस्थान, अजय भीतर चला जाता है।**]

चौधरी : तभी तो कोई शरीफ इस मुहल्ले में टिक नहीं पाता।

मुंशीजी : अजी, बड़े शरीफ के शहजादे देखे। तुम क्या जानो चौधरी। कयामत हुसेन ! तुम तो दिन–रात तम्बाकू की दूकान पर बैठे रहते हो। ये लोग जब से यहाँ आये हैं, हमारी गली गन्दी हो गयी।

खन्ना : चुप..........चुप........चुप ! अरे, मम्मी की छोटी बहन आयी हैं, क्या कहेंगी ?

चौधरी : कौन समझाये मुंशीजी को! अरे मुहल्ले में एक पढ़ा–लिखा विद्वान् है तो यहाँ रोशनी है, वरना अँधेरा है।

मुंशीजी : भइया ले जाओ यह चिराग अपनी दूकान पर !............ मार के गली गन्दी कर दी इन लोगों ने।

खन्ना : इतने–इतने मुर्गी के अण्डे। जहाँ देखो, वहीं अण्डों के छिलके।

मुंशीजी : अजी, इन लोगों की वजह से गली के कुछ लौंडे भी अण्डा खाने लगे।

खन्ना : और वह गोश्त वाला! जो यहाँ भरी खँचिया लिये आने लगा। हद हो गयी, कभी नहीं हुआ था ऐसा यहाँ।

ठकुराइन : **(जो अब तक किवाड़.......के पास खड़ी थी, बढ़कर)** और वह रोज ठीक मेरे दरवाजे के सामने खँचिया खोलकर बैठता है।

मुंशीजी : छीः छीः छीः ! कभी नहीं हुआ ऐसा। मजाल क्या कभी चिकवा–कसाई यहाँ आया हो।

ठकुराइन : एक–एक बोटी गोश्त के लिए बच्चे लड़ते हैं आपस में, बाहर ला–लाकर खाते हैं।

खन्ना : और ये जो कुत्ते–बिल्लियाँ हैं, पूछो न इनकी, गोश्त की हड्डियों को इधर–उधर बिखेरते रहते हैं, नालायक।

ठकुराइन : और कौए जो हैं, एक दिन भगतिन बुआ के आँगन में हड्डियाँ गिरा आये। दो दिनों तक उपवास किया उन्होंने।

मुंशीजी : सुना चौधरी कयामत हुसेन !

चौधरी : अजी छोटी–छोटी बातों का क्या झगड़ा। शरीफ आदमी के लिए कुछ सह लेना बुरी बात थोड़े ही है।

ठकुराइन : देखो क्या बम्ब लेकर आते हैं मास्टर साहब ! चेयरमैन साहब के यहाँ फरियाद लेकर गये हैं।

मुंशीजी : अजी बहू, रखो फरियाद। जैसे मास्टर साहब, उससे दूना चेयरमैन साहब। वह देखो न गली की म्यूनिस्पिल लाइट। ससुरी जैसे सदा बुझी रहती है। सारा तेल बेच खाते हैं। सब शराबी–कबाबी। ऊपर से राम–राम, भीतर से कसाई का काम। **(रुककर)** चेयरमैन साहब ने ही तो मास्टर साहब को यहाँ ला बसाया है।

ठकुराइन : चेयरमैन साहब का घर है, जिसे चाहें उसे बसायें।

मुंशीजी : अजी बहू तू का जाने है ! यह घर था अनोखेलाल पटवर्धनदास के भतीजे गोबर्धनदास के लड़के मिठाईलाल का। उस बेचारे को चुंगी के एक मुकदमें में फाँसकर चेयरमैन साहब ने इस मकान को अपनी रखैल औरत के नाम लिखा लिया।

खन्ना : म्युनिस्पेलिटी जिन्दाबाद। तभी तो मैं कहूँ कि चेयरमैन साहब के इतने घर क्यों हैं ? हर सड़क, हर गली में चेयरमैन साहब का घर। कहीं लौडों के नाम, कहीं बहुओं के नाम।

मुंशीजी : और. कहीं रखैलों के नाम।

बहादुर : **(जो अब तक चारपाई पर चुपचाप बैठा था)** जरा धीरे–धीरे बोलो बाबा।

खन्ना : अमें दरवाजा तो बन्द है मास्टर साहब का !

बहादुर : **(उठकर जैसे दिखाता हुआ)** लेकिन सब खिड़कियों में छिपे बैठे हैं। नीता दरवाजे में खड़ी होगी।

ठकुराइन : सबके सब चेयरमैन साहब के यहाँ पहुँच जाते हैं।

मुंशीजी : अजी, कौन परवाह करता है ! आकर खड़े न हो जायँ चेयरमैन साहब, सात पुश्त की हुलिया जानता हूँ; उधेड़ कर रख दूँगा।

चौधरी : लेकिन फायदा क्या इन बातों से ! जरा मुहब्बत से काम लो न !

[गली की ओर जाने लगते हैं]

खन्ना : चले चौधरी कयामत हुसेन ?

चौधरी : हाँ भाई, पता नहीं क्यों, कमर में दर्द हो रहा है।

[प्रस्थान]

खन्ना : अरे ! मास्टर साहब तो लौटे आ रहे हैं।......वह आ गये।

मुंशीजी : चेयरमैन साहब भी संग हैं ?

खन्ना : अजी, वह क्या आयेगा, कहीं पिये पड़ा होगा।

[प्रोफेसर सतसंगी का प्रवेश।]

प्रोफेसर : घबड़ाओ नहीं, कल होगा इसका फैसला।

खन्ना : चेयरमैन साहब मुकदमें के सिलसिले में कहीं बाहर गये होंगे भाई।

[प्रोफेसर साहब घर में आते हैं।]

प्रोफेसर : **(तुरन्त भीतर से आवाज आती है)** तुम लोग खिड़कियों पर क्यों बैठते हो ? पलंग पर बैठो, कुर्सियों पर बैठो ....यह क्या तमाशा है!

[अजय प्रोफेसर का हाथ पकड़े बाहर आता है।]

अजय : पापा! वह देखिए, जो खड़े हैं न ! वे सब कह रहे थे कि हम लोग मास्टर साहब को पीटेंगे।

नीता : **(सहसा बाहर निकलकर)** बहादुर की माँ गाली बक रही थीं।

प्रोफेसर : क्यों ? तुम लोग गाली दे रहे थे ? क्यों बहादुर की माँ! मैं एक–एक को हथकड़ी पहनवा के छोड़ूगा, हाँ !

ठकुराइन : सुना !.......... देखा न मुंशीजी, सुना खन्ना बाबू ? यह है पानी में आग।

मुंशीजी : गजब के छोकड़े हैं भइया !

खन्ना : कमाल है।

बहादुर : झुट्ठे कहीं के।

[तेजी से मम्मी का प्रवेश]

मम्मी : किन देहातियों के मुँह लगे हो ? चलो अन्दर चलो।

प्रोफेसर : चलो आता हूँ।

मम्मी : चलो, सरला, बुला रही है। तबीयत ठीक नहीं है उसकी।

[प्रोफेसर अजय और मम्मी का प्रस्थान]

मुंशीजी : यह सरला कौन ?

खन्ना : मास्टर साहब की साली। बच्चा होने वाला है।

मुंशीजी : ओ हो !.................अच्छा चलूँगा बहू !

[गली में बढ़कर एक ओर मुड़ जाते हैं।]

खन्ना : टिकट बाबू अब तक नहीं आये। एक घंटा रात बीत गया होगा।

ठकुराइन : आज पता नहीं कहाँ देर कर दी, आ जाना चाहिए था अब तक।

खन्ना : जाओ बहादुर, चलो हमारे घर चलो।

ठकुराइन : हाँ, ले जाओ इसे !

[खन्ना के संग बहादुर जाता है। गली सूनी हो जाती है, ठकुराइन भीतर चली जाती हैं। कुछ क्षणों बाद गली से एक मूँगफली बेचने वाला निकलता है। बाहर से टिकट बाबू आते हैं और सीधे अपने घर में जाने लगते हैं।]

मूँगफलीवाला : जैरामजी की टिकट बाबू !

टिकट बाबू : जैराम........जैराम !

[टिकट बाबू का प्रस्थान]

मूँगफलीवाला : (आवाज देने लगता है) ताजी भुनी मूँगफली। चिनियाँ

बादाम, जाड़े का मेवा है। खरी भूंजी मूँगफली है। चार आने पौआ है। बालू की भुनी हैं। ताजी मूँगफली है।

[भीतर से दौड़ता हुआ अजय निकलता है।]

अजय : मूंगफलीवाले ! चलो इधर आओ।..............बड़े बत्तमीज हो, जल्दी क्यों नहीं आते ?

मूँगफलीवाला : लीजिए हुजूर, आ गया, बिगड़िए नहीं। अभी बहुत कम उमर है आपकी। बहुत गुस्सा करने से जुकाम हो जायेगा।

अजय : बात मत करो !

मूँगफलीवाला : **(मूँगफली देता हुआ)** जल्दी कीजिए जल्दी हाँ,.........पैसे दीजिए पैसे, तूफान आनेवाला है, आँधी और पानी.....।

[पैसा लेकर चल देता है, उसकी आवाज अभी गली में सुनाई पड़ रही है। अजय अपने घर में जाकर भीतर से दरवाजा बन्द कर लेता है। कुछ क्षणों बाद अपने दरवाजे से टिकट बाबू का प्रवेश।]

टिकट बाबू : **(आवेश में)** कौन है वह शरीफजादा ! जरा बाहर आकर मुझे अपना मुँह तो दिखाए। यह दूध का धुला घर में क्यों बैठा है ?

[बन्द दरवाजे की साँकल बजाते हैं।]

मूँगफलीवाला : तहजीब के पिल्ले ! घर में से निकलता क्यों नहीं ? निकल घर में से ! मँगवा हथकड़ी –बेड़ी हमारे लिए।

[दरवाजा खुलता है, प्रोफेसर का प्रवेश]

प्रोफेसर : **(निकलकर)** क्यों हद किए डाल रहे हैं आप ? आखिर आपकी मंशा क्या है ?

टिकट बाबू : मैं तुम्हारे हाथ से हथकड़ी पहनने आया हूँ।

प्रोफेसर : कुछ ध्यान रखकर बातें किया करो। अजय की मौसी आयी हुई हैं, उसकी तबीयत खराब है। क्या कहेंगी वह? हमारी न सही, मेहमान की तो इज्जत करो।

टिकट बाबू : मेरी बात का जवाब दो पहले, बीच में मेहमान मत

लाओ। **(रुककर)** दुनिया के शरीफजादे तुम्हारे ही बीबी–बच्चे हैं ? तुम्हारे ही बीबी –बच्चे तुम्हें प्यारे हैं ? मेरे नहीं क्या ?

प्रोफेसर : भाई यह कौन कह रहा है ?

टिकट बाबू : ट्यूशन करके जो धुलाये घूमते हो, जरा टीमटाम से रह लेते हो, चार–छः रेकावी–प्लेट्स हैं तुम्हारे पास, इसीलिए तुम बड़े शरीफजादे हो गये ? **(रुककर)** मेरे दरवाजे के सामने खुले मैदान में तुम लोग मच्छरदानी लगाकर सोते हो– और हम परदे में रहते हैं, तभी हम गन्दे हैं, तुम शरीफ़ हो ? हम नाख्वाँदा हैं ? बत्तमीज हैं।

[भीतर से ठकुराइन का प्रवेश]

ठकुराइन : अच्छा........अच्छा चलो। बहुत हो गया। ....मास्टर बाबू जाओ अपने घर में।

प्रोफेसर : तुम जैसे लोगों से बात् करना भी गुनाह है।

[प्रोफेसर अन्दर चले जाते हैं]

टिकट बाबू : रहना हो तो मुहल्ले में कायदे से रहो, वरना रास्ते न बन्द कर दूँ तो ठाकुर छैलबिहारी सिंह नाम नहीं।

ठकुराइन : अच्छा ! अब चुप रहो।

[गली में मुंशी जी आते हुए दिखाई देते हैं।]

ठकुराइन : चलो, अब नहीं कुछ बोलेंगे मास्टर साहब।

मुंशीजी : जैराम जी की टिकट बाबू।

टिकट बाबू : राम–राम मुंशीजी **(रुककर)** बड़े तहजीबदार बन के आये हैं।

मुंशीजी : तहजीबदार ही नहीं ठाकुर साहब ? अप टू डेट, शरीफ।

[गली में से खन्ना बाबू और बहादुर का प्रवेश]

खन्ना : बड़ा शोरगुल मचा टिकट बाबू ! अरे अन्दर चलकर बैठो, आँधी–पानी आनेवाला है चलो भीतर बैठें न !

टिकट बाबू : अजी अब मैं यहीं बाहर ही रहा करूँगा। सोना–खाना सब यहीं करूँगा।

[सब हँस पड़ते हैं]

मुंशीजी : जी हाँ, तभी तो हम लोग तहजीबदार कहलायेंगे।

खन्ना : तहजीबदार ही नहीं– अपटूडेट; शरीफ।

मुंशीजी : बच्चों से कह दो बहू, तुम लोगों को भी पापा औ मम्मी कहा करें। क्यों रे बहादुर?

[बहादुर भागकर भीतर चला जाता है।]

खन्ना : क्या कमाई करते हो टिकट बाबू ! अरे घर में दो –चार कप, प्याले, काँटे–छुरी–चम्मच तो रख दो अब !

टिकट बाबू : मारा सारे मुहल्ले का सत्यानाश कर दिया।

मुंशीजी : मम्मी जी बी० ए० पास हैं।

खन्ना : अजी मुंशीजी, तुम्हें क्या पता ! एम० ए० का पहला साल भी पास किया है।

मुंशीजी : चाहे जो पास हों, मुहल्ले की कुछ लड़कियाँ इनकी देखा–देखी उल्टे–पल्ले की साड़ियाँ जरूर पहनने लगीं।

खन्ना : और फिल्मी गाने जो गाने लगीं। मास्टर साहब का रेडियो तो सिलोन रेडियो है जी।

ठकुराइन : अच्छा चलो अब अपने–अपने घर। आसमान की तरफ तो देखो।

खन्ना : आय हाय........आँधी–पानी ! क्या बज रहे हैं टिकट बाबू?

टिकट बाबू : पौने नौ के करीब हो रहे हैं।

[भीतर से प्रोफेसर साहब निकलते हैं।]

प्रोफेसर : आप लोगों से प्रार्थना है कि आप यहाँ शोर न करें, अजय की मौसी की तबीयत अच्छी नहीं है।

[प्रोफेसर साहब अपने घर में जाते हैं।]

खन्ना : मुंशीजी, चलो चलें। नहीं अभी मम्मी निकलेंगी !

मुंशीजी : अजी बहुत देखी है.................

[खन्ना के संग गली में प्रस्थान, टिकट बाबू के संग ठकुराइन का अपने घर में जाना। क्षण भर बाद गली में दही–रबड़ी वाले की आवाज उठती है। अजय तेजी से अपने दरवाजे से निकलता है।]

अजय : **(आवाज देता है)** दही–रबड़ीवाले! चलो इधर आओ !

[नीता भी निकलती है।]

नीता : मम्मी ! मैं भी लूँगी रबड़ी।

अजय : पापाजी मैं दही लूंगा।

नीता : क्यों शोर करते हो ? तुमने तो सुबह दही–बड़ा खरीदा था।

अजय : तुमने भी तो चाट खायी थी।

प्रोफेसर : **(तेजी से निकल कर)** मत शोर करो ! शरम नहीं आती तुम लोगों को, तुम्हारी मौसी की तबीयत खराब है और तुम लोग....

नीता : पापा, यही अजय शोर करता है।

अजय : मैं दही लूंगा पापाजी !

मम्मी : **(प्रवेशकर)** हाय ! कितने भुक्कड़ हो गये मेरे बच्चे यहाँ आकर। जयपुर में थे, बाजार की चीज का नाम तक नहीं लेते थे। कभी जानते भी न थे कि ये खोंचेवाले, फेरीवाले क्या होते हैं ?

प्रोफेसर : यहाँ तो उसकी आवाज सुनते ही चीखने लगते हैं, जैसे कभी कुछ खाया–पिया ही नहीं।

मम्मी : क्या कहूँ मैं ? शाम को मैंने इनके लिए गजक और मूँगफली खरीदी थी ! क्यों अजय ? ....नीता........।

[फिर दही–रबड़ीवाले की आवाज]

अजय : देखिये मम्मी ! बहादुर मुझे मुँह बना–बनाकर चिढ़ा रहा है। मुझे पैसे दो मम्मी ! मैं दही लूँगा, हाँ ! **(पुकार उठता है)** ओ दही–रबड़ी वाले।

प्रोफेसर : **(गुस्से में अजय को एक चपत देकर)** नालायक कहीं के ! तुम लोगों को तो बन्द कर दे कहीं; जहाँ हवा–पानी भी न मिले।

[अजय रोता है।]

मम्मी : अभी इस जेलखाने में बन्द करने से जी नहीं भरा क्या? हाय मेरी किस्मत फूट गयी। (अजय को चिपका लेती

है) रोओ नहीं बेटे ! तुम्हारी मौसी की तबीयत ठीक होते ही हम लोग यहाँ से मेरठ चले जायेंगे। करें अपना राज्य अकेले यहाँ !

प्रोफेसर : चली जाओ न मेरठ !

मम्मी : अच्छा लड़ो नहीं मुझसे !

[फिर गली में दही–रबड़ी की आवाज]

प्रोफेसर : **(गुस्से में बढ़कर)** सुनो जी दही–रबड़ी वाले ! मत आया करो इधर! कोई अकल न तमीज ! रात के नौ बज रहे हैं, इस समय यह यहाँ पों–पों करने चले हैं। **(डाँटते हुए)** चले जाओ यहाँ से अगर अपनी खैरियत चाहो।

[दही-रबड़ी वाले की आवाज गली में दूर चली जाती है।]

प्रोफेसर : खबरदार ..... अब कभी जो इधर आया !

अजय : मम्मी दही–रबड़ी ! **(मचलकर रोता है)** दही–रबड़ी !

[आँधी आ जाती है, एक ओर से मूगँफलीवाला तेजी से भागता हुआ गली में जाने लगता है।]

मूँगफलीवाला : **(आवाज देता हुआ)** आँधी ...... पानी.....! आ गयी आँधी आ गयी आँधी ! **(प्रस्थान)**

प्रोफेसर साहब का परिवार भीतर भागता है। भीतर से दरवाजा बन्द होता है। आँधी के संग तेज वर्षा। ठकुराइन तेजी से आकर अपने दरवाजे की चारपाइयों को भीतर ले जाती हैं। कुछ क्षणों बाद अपने दरवाजे से मम्मी निकलती हैं। इधर–उधर देखती हैं और एकाएक दौड़कर ठकुराइन के दरवाजे पर आती हैं।

मम्मी : ठकुराइन ! ओ जी ठकुराइन ! बहादुर की माँ !

[ठकुराइन का प्रवेश]

ठकुराइन : क्या है बहू ?

मम्मी : जरा चलकर संभाल लो, अजय की मौसी की तबीयत बहुत खराब हो रही है।

ठकुराइन : हाँ.....हाँ......चलो !

[भीतर से टिकट बाबू की आवाज आती है]

ठकुराइन : चलो मैं आ रही हूँ, अभी आयी !

[मम्मी का प्रस्थान, ठकुराइन भीतर लौटती है, फिर बाहर निकलकर जैसे ही बढ़ने को होती है, टिकट बाबू का प्रवेश]

टिकट बाबू : कहाँ जा रही हो इस तूफान में ?

ठकुराइन : टोक दिया न ! बड़ी बुरी आदत है तुम्हारी।

टिकट बाबू : वह तो है ही , लेकिन इस आफत में जा कहाँ रही हो?

ठकुराइन : अजय की मौसी की तबीयत बहुत खराब हो गयी है। दर्द से बेहोश हो रही है। जरा देखने जा रही हूँ।

टिकट बाबू : इसी को गँवार औरत कहते हैं। तभी तो अजय के पापा और मम्मी तुम जैसी औरतों को घास तक नहीं डालते!

ठकुराइन : अजी चुप रहो तुम ! तुम मर्दों को क्या मतलब इन बातों से। यह हम लोगों का मामला है।

टिकट बाबू : है तो मामला तुम लोगों का। पर यह न कहना कि अजय की मम्मी ने तुम्हारे सर का बाल नोंचा।

ठकुराइन : क्या बकते हो जी ! मम्मी एकदम से खराब ही हैं क्या। याद है, अपनी शकुन्तला बेटी जब बीमार हो गयी थी। तुम तो ड्यूटी पर बाहर गये थे। रात–रात भर मम्मी बैठी रहती थीं शकुन्तला के सिरहाने !

टिकट बाबू : तो जाओ तुम भी बैठो न !

ठकुराइन : मम्मी खुद शकुन्तला को लेकर मुरादाबाद अस्पताल में गयी थीं! तुम्हें क्या पता किसके भीतर क्या है! तुम तो बाहर ही बाहर देखते हो न!

[चली जाती है मम्मी के घर में प्रवेश, टिकट बाबू चुप खड़े रह जाते हैं ! क्षण भर बाद ठकुराइन अपने संग अजय, नीता को लिये आती है और अपने घर में जाने लगती है।]

टिकट बाबू : अब यह क्या है? क्या तूफान है यह ?

ठकुराइन : चुप रहो जी! **(पुकारती है)** शकुन्तला, ओ शकुन्तला।

आवाज : **(भीतर से)** आयी अम्मा।

ठकुराइन : ले सम्हाल इन बच्चों को;

[बहादुर का प्रवेश]

ठकुराइन : बहादुर ! ले जा इन्हें अपने संग भीतर ! भूखे हैं इन्हें खाना खिला शकुन्तला।

बहादुर : चलो अजय, नीता चलो ! एक संग खाना खायेंगे।

[बहादुर के संग अजय–नीता का प्रस्थान]

टिकट बाबू : पागल तो नहीं हो गयी हो तुम !

ठकुराइन : पागल होगे तुम ! जाओ अन्दर बच्चों को खाना खिलाओ! मैं अभी आयी। पता है ! अजय की मौसी को बच्चा होने वाला है ! **(हँसती हैं फिर जैसे गा पड़ती है)** 'जनमें हैं कुँअर कन्हैया, अवध में बाजे बधैया।'

[दौड़ी हुई अजय के घर में भाग जाती है। टिकट बाबू खड़े रह जाते हैं। कुछ क्षणों बाद भीतर से बहादुर दौड़ा आता है।]

बहादुर : बाबूजी...... बाबूजी ! अजय और नीता को मैंने सारी दही–रबड़ी दे दी.......। चलिए आप भी रोटी खा लीजिए।

टिकट बाबू : वे लोग खाना खा रहे हैं ?

बहादुर : जी हां, खाना खा रहे हैं।

टिकट बाबू : जाओ, तुम भी खा लो उनके संग।

[बहादुर अन्दर भाग जाता है। टिकट बाबू फिर अकेले खड़े रह जाते हैं। कुछ देर के उपरान्त हँसती हुई प्रसन्न मन ठकुराइन निकलती हैं।]

ठकुराइन : सुना जी, बच्चा पैदा हुआ है अजय की मौसी को !

टिकट बाबू : अच्छा.........

ठकुराइन : **(पुकारती हुई अपने घर में चली जाती हैं)** शकुन्तला ला तो ढोलक कहाँ है।.........

[अन्दर से ढोलक लिये भागती हैं और मम्मी के घर में अदृश्य हो जाती हैं। और कुछ क्षणों बाद ढोलक पर यह गीत उभरता है।]

जनमें हैं कुँअर कन्हैया, अवध में बाजे बधैया।
ऊँचे चढ़िके धगरिन पुकारे
कोई है नार छिनैइया, अवध में बाजे बधैया।
दशरथ के चार बेटा हुए हैं
केकर होला बड़ैइया, अवध में बाजे बधैया।
राम से लछ्मन, भरत शत्रुघन
राम के होला बड़ैइया, अवध में बाजे बधैया।

[इसी संगीत पर धीरे–धीरे पर्दा गिरता है।]

दूसरा दृश्य

[फिर वहीं, उसी स्थिति में पर्दा उठता है। रात के नौ बजे का समय है। चारपाई पर सिर झुकाये ठकुराइन बैठी हुई हैं– चुप चिन्तित, जैसे रो रही हो, गली में मुंशी जी आते हैं।]

मुंशीजी : ठकुराइन; बहादुर की माँ ! ..... ओ बहू ! क्या बात है, बोलती क्यों नहीं ? मम्मी के घर से फिर कुछ हुआ है क्या ? .... बोलो, क्या बात है ? मुझे बताओ न !

[ठकुराइन बिना कुछ बोले चुपचाप अन्दर चली जाती हैं।]

मुंशीजी : अरे ! क्या बात हुई ? **(गली की ओर आवाज देते हैं)** खन्ना बाबू ! ओ जी खन्ना बाबू !

[चौधरी कयामत हुसैन निकालते हैं]

चौधरी : किसे पुकार रहे हैं मुन्शीजी ?

मुंशीजी : कोई है ही नहीं यहाँ !

चौधरी : खन्ना बाबू सो गये होंगे कि ....

मुंशीजी : ठकुराइन चुपचाप यहाँ बैठी थीं। जैसे लगा कि रो रही थीं। मैंने बुलाना चाहा, वह घर में चली गयीं, कुछ बताया नहीं, पता नहीं क्या बात है।

चौधरी : कुछ होगा मुंशीजी ! घर–गृहस्थी है पता नहीं क्या–क्या कहाँ–कहाँ होता रहता है ?

[आगे बढ़ने लगते हैं]

मुंशीजी : दुकान जा रहे हो चौधरी ?

चौधरी : नहीं, जरा स्टेशन की ओर जा रहा हूँ !

[प्रस्थान, कुछ क्षणों बाद सामने से टिकट बाबू और बहादुर का प्रवेश, बहादुर भीतर जाता है]

मुंशीजी : राम–राम टिकट बाबू !

टिकट बाबू : राम–राम मुंशीजी।

मुंशीजी : ड्यूटी से लौट आये क्या ? क्या क्या बात है बहादुर ?

टिकट बाबू : छुट्टी लेकर आ रहा हूँ मुशीजी ! बहादुर मुझे बुलाने गया था।

मुंशीजी : बात क्या है ? शुभ तो है न ?

टिकट बाबू : शुभ तो नहीं है मुंशीजी ! मम्मी की छोटी बहन आयी थीं न, अजय की मौसी !

मुंशीजी : जी हाँ, जिन्हें अभी परसों रात को बच्चा पैदा हुआ है।

टिकट बाबू : जी हाँ, आज सुबह उसका स्वर्गवास हो गया।

मुंशीजी : **(दुख से)** च......च......च.....च राम राम......! ओ हो बड़ा बुरा हुआ !

[दरवाजे पर आ ठकुराइन निःशब्द रो रही हैं !]

टिकट बाबू : बहुत कमजोर था बच्चा। अपने पूरे दिन के पहले ही हो गया था। शायद आठ ही महीने में।

मुंशीजी : सब ईश्वर की माया है टिकट बाबू और कुछ नहीं। जिसे चाहे जिलाये, जिसे चाहे मारे ! **(रुककर)** लेकिन यह बहादुर की माँ इस तरह क्यों रो रही हैं ?

टिकट बाबू : कुछ न पूछिए मुंशीजी ! यहाँ तो गजब की बातें पैदा कर दी लोगों ने !

मुंशीजी : **(आश्चर्य से)** अच्छा ! अरे

टिकट बाबू : मम्मी का कहना है कि ठकुराइन ने बच्चे पर जादू कर दिया तभी वह चटपट मर गया। और मास्टर साहब—प्रोफेसर सतसंगी का कहना है कि ठकुराइन ने गन्दे हाथों से बच्चे को छुआ था; उसे सेप्टिक या 'टिटनेस' हो गया।

मुंशीजी : आह.... आ ....! गजब हो गया यह तो !

टिकट बाबू : इस गँवार औरत को यही दण्ड चाहिए मान न मान मैं तेरा मेहमान ! ठीक कहा है लोमड़ी चली सगुन दिखावै, आपन सर कुत्तन से नोचवावै **(रुककर)** खड़ी रोती क्या हो ? जाओ और प्रीति दिखा आओ न ! मम्मी.....मम्मी ....मम्मी बड़ी अच्छी हैं। ढोलक लेकर और मंगल सोहर गा आओ न !

मुंशीजी : बहू का क्या दोष इसमें टिकट बाबू !

टिकट बाबू : अब पता लगा कि नहीं कि वे लोग क्या हैं और तुम क्या हो?

ठकुराइन : **(रुँधे कण्ठ से)** आज मैं जादू—टोना वाली हो गई !

टिकट बाबू : अरे ! प्रीति का कुछ तो दण्ड भोगोगी न !

मुंशीजी : टिकट बाबू बड़े अजीब हैं ये लोग ! बड़ा बुरा हुआ !

टिकट बाबू : इस गँवार औरत की वजह से आज मेरी गर्दन नप गयी मुंशीजी ! बारहाँ मना किया इसे, लेकिन उस आँधी—तूफान में भी यह न रुकी ! सारी रात दौड़ती भागती रही और अब बैठकर रो रही है। **(चिढ़कर)** जैसे तेरे रोने का असर उन पर पड़ेगा ही। अरे वे आदमी नहीं, नासूर हैं नासूर!

[अपने दरवाजे से प्रोफेसर का प्रवेश]

प्रोफेसर : क्या कहा जरा जबान सम्हाल कर बोलो ! कोई तमीज है कि नहीं ! हमारे ऊपर इतनी बड़ी आफत पड़ी और तुम मुझे खरी—खोटी खड़े सुनाने खड़े हो !

टिकट बाबू : जी हाँ मास्टर साहब, आप लोगों ने तो हम पर फूल बरसा दिया ! हम सीधे हैं, तभी तुम्हारी नजरों में हम गन्दे और बत्तमीज हैं। जादू टोना डालते हैं हम। लेकिन एक बार फिर से सोच लो मास्टर साहब अपनी जिन्दगी के बारे में, जो तुम जी रहे हो, वह तुम्हारी जिन्दगी नहीं है, नकल है, नाटक है, दिखावा है।

[**प्रोफेसर साहब घर में लौट चुके हैं**]

मुंशीजी : छोड़ो ठाकुर साहब ! सिर मत धुनो भाई ! जब तीर ही कमान से निकल गया तो................छोड़ो ! चुप रहो ठकुराइन.........भूल जाओ भूल ! रोने से पसीजने वाले ये लोग नहीं !

[**उसी क्षण मूँगफली वाला गली में से आवाज देता आता है।**]

मूगँफलीवाला : ताजी भुनी मूँगफली ! चिनियाँ बादाम ! खरी–भुनी मूँगफली ! मौसम का मेवा ! बालू की भुनी !

अजय : **(तेजी से निकलकर)** चलो इधर मूँगफली वाले !

मूगँफलीवाला : लीजिए............लीजिए सरकार !

[**अजय मूँगफली लेने लगता है, तभी धीरे से बहादुर का प्रवेश**]

बहादुर : मुझे भी देना मूँगफली वाले ! **(रुककर)** अबे बत्तमीज जल्दी क्यों नहीं देता ?

टिकट बाबू : इधर तो आ बहादुर ! क्यों कहा बत्तमीज तूने ?

[**एक चाँटे की मार, ठकुराइन दौड़कर पकड़ लेती हैं।**]

ठकुराइन : खबरदार जो अब मेरे बेटे को मारा !

टिकट बाबू : अजय की नकल करेगा तू ? खाल उधेड़कर रख दूँगा!

मुंशीजी : राम....राम ! छोड़िए भी टिकट. बाबू!

टिकट बाबू : कहाँ मिला तुझे यह पैसा ? किसने दिया? सच...सच बता !

ठकुराइन : मैंने दिया..... मैंने दिया।

बहादुर : यह इकन्नी मुझे रास्ते में पड़ी मिली।

[अजय और मूँगफलीवाले का चुपके से प्रस्थान]

टिकट बाबू : पड़ी मिली है ! यह झूठ।

[मारने लगते हैं माँ और मुंशीजी रक्षा करते हैं।]

बहादुर : आपकी पैंट से चुराई है।

टिकट बाबू : यह झूठ और चोरी !

[मारने दौड़ते हैं, माँ बहादुर को घर खींच ले जाती है।]

टिकट बाबू : मेरे बच्चे कितने भी गन्दे, बत्तमीज, लड़ाकू हों, मुझे मंजूर है, लेकिन चोरी करें, झूठ बोले, मैं इन्हें जिन्दा नहीं रहने दूँगा। मार के मर जाऊँगा इन्हीं के संग। **(रुककर)** मुंशीजी ! मुझे पता है झूठ–चोरी के कीड़े कहाँ मिले हैं मेरे बच्चे को !

मुंशीजी : ईश्वर बचाये इन लोगों से !

टिकट बाबू : अब मैं यहाँ एक क्षण नहीं रह सकता मुशी जी ! छोड़ दे रहा हूँ यह जगह!

मुंशीजी : क्या बच्चों की तरह बात करते हो ठाकुर साहब ! ऐसे कोई छोड़कर भागता है ! हिम्मत से काम लो।

टिकट बाबू : मेरे पास इतनी हिम्मत नहीं। **(रुककर)** अच्छा नमस्ते मुंशी जी!

[अन्दर प्रस्थान]

मुंशीजी : लेकिन अभी ऐसा न करना ठाकुर साहब ! मैं राय दूँगा तुम्हें ! सुबह आऊँगा हाँ !

[गली में प्रस्थान। कुछ क्षणों के बाद भीतर से ठकुराइन निकलती हैं।]

ठकुराइन : **(मम्मी के बन्द दरवाजे पर दस्तक)** अंजय की मम्मी !. ....खोलो बहू!

मम्मी : कौन ? (दरवाजा खोलकर बाहर आती हैं) ठकुराइन !

क्या है? .....बोला ! बोलो न ! क्या है ?..... बोलो ठकुराइन !

ठकुराइन : हम लोग जा रहे हैं यहाँ से !

मम्मी : नहीं....नहीं...ऐसा नहीं ठकुराइन जीजी !

ठकुराइन : हमारी भूल–चूक माफ करना बहू।

[मम्मी चुप हैं, आँचल से आँखें पोंछती हैं।]

ठकुराइन : हम लोग रेलवे क्वार्टर में जा रहे हैं बहू ! वहाँ आना, भेंट होगी ! **(रो पड़ती है)** जरूर आना !

[दोनों खड़ी निःशब्द रो रही हैं, भीतर से टिकट बाबू का प्रवेश]

टिकट बाबू : अभी पेट नहीं भरा तुम्हारा ?.... चलो इधर !

[ठकुराइन के संग खिंची हुई मम्मी भी चली आती हैं, तभी अपने भीतर से प्रोफेसर का प्रवेश।]

प्रोफेसर : वहाँ क्या कर रही हो ? चलो इधर !

[दोनों ओर चुप खड़ी एक दूसरे को देख रही हैं, प्रोफेसर और टिकट बाबू अपने–अपने दरवाजे पर खड़े हैं; तेजी से पर्दा गिरता है।]

❑❑❑

नये मेहमान

–उदयशंकर भट्ट

पात्र–परिचय

पुरुष पात्र	स्त्री पात्र
विश्वनाथ	रेवती
नन्हेमल	किरण
बाबूलाल	
प्रमोद	

[गरमी की ऋतु, रात के आठ बजे का समय। कमरे के पूर्व की ओर दो दरवाजे। दक्षिण का द्वार बाहर आने–जाने के लिये। पश्चिम का द्वार भीतर खुलता है। उत्तर की ओर एक मेज है, जिस पर कुछ किताबें और अखबार रखे हैं। पास ही दो कुर्सियाँ, पश्चिम के द्वार के पास एक पलंग बिछा है। मेज पर रखा हुआ पुराना पंखा चल रहा है, जिससे बहुत कम हवा आ रही है। कमरा बेहद गरम है। मकान एक साधारण गृहस्थ का है। पलंग के पास चार–पाँच साल का बच्चा सो रहा है। पंखे की हवा केवल उस बच्चे को लग रही है। फिर भी वह पसीने से तर है इसीलिए वह कभी–कभी बेचैन हो उठता है। फिर सो जाता है।

कुरता–धोती पहने एक व्यक्ति प्रवेश करता है। पसीने से उसके कपड़े तर हैं। कुरता उतार कर वह खूँटी पर टाँग देता है और हाथ के पंखे से बच्चे को हवा करता है। उसका नाम विश्वनाथ है। उमर 45 वर्ष, गठा हुआ शरीर, गेहुँआ रंग, मुख पर गंभीरता तथा सुसंस्कृति के चिह्न।]

विश्वनाथ: ओफ, बड़ी गरमी है ! **(पंखा जोर–जोर से करने लगता है)** इन बन्द मकानों में रहना कितना भयंकर है। मकान है कि भट्टी !

[पश्चिम की ओर से एक स्त्री प्रवेश करती है]

रेवती : **(आँचल से मुँह का पसीना पोंछती हुई)** पत्ता तक नहीं हिल रहा है। जैसे साँस बन्द हो जायगी। सिर फटा जा रहा है। **(सिर दबाती है)**

विश्वनाथ: पानी पीते–पीते पेट फूला जा रहा है, और प्यास है जो कि बुझने का नाम नहीं लेती। अभी चार गिलास पीकर आया हूँ

फिर भी होंठ सूख रहे हैं। एक गिलास पानी और पिला दो। ठंडा तो क्या होगा !

रेवती : गरम है। आँगन में घड़े में भी तो पानी ठंडा नहीं होता— हवा लगे तब तो ठंडा हो। जाने कब तक इस जेलखाने में सड़ना होगा।

विश्वनाथ: मकान मिलता ही नहीं। आज दो साल से दिन—रात एक करके ढूंढ़ रहा हूँ। हाँ, पानी तो ले आओ, जरा गला ही तर कर लूँ।

रेवती : बरफ ले आते। पर मरी बरफ भी कोई कहाँ तक पिये।

विश्वनाथ: बरफ ! बरफ का पानी पीने से क्या फायदा ? प्यास जैसी की तैसी, बल्कि दुगनी लगती है। ओफ ! लो पंखा कर लो। बच्चे क्या ऊपर हैं।

रेवती : रहने दो तुम्हीं करो। छत इतनी छोटी है कि पूरी खाटें भी तो नहीं आतीं। एक खाट पर दो—दो तीन—तीन बच्चे सोते हैं, तब भी पूरा नहीं पड़ता।

विश्वनाथ: एक यह पड़ोसी हैं, निर्दयी जो खाली छत पड़ी रहने पर भी बच्चों के लिये एक खाट नहीं बिछाने देंगे।

रेवती : वे तो हमें मुसीबत में देख कर प्रसन्न होते हैं, उस दिन मैंने कहा, तो लाला की औरत बोली, 'क्या छत तुम्हारे लिये है? नकद पचास देते हैं, तब चार खाटों की जगह मिली है। न, बाबा, यह नहीं हो सकेगा। मैं खाट नहीं बिछाने दूँगी। सब हवा रुक जायेगी। उन्हें और किसी को सोता देख कर नींद नहीं आती।'

विश्वनाथ: पर बच्चों के सोने में क्या हर्ज है ? ज़रा आराम से सो सकेंगे। कहो तो मैं कहूँ ?,

रेवती : क्या फायदा ? अगर लाला मान भी लेगा, तो वह दुष्टा नहीं मानेगी वैसे भी मैं उसकी छत पर बच्चों का अकेला सोना पसन्द नहीं करूँगी, बड़ी डायन औरत है। उसके तो बाल—बच्चे हैं नहीं, कहीं कुछ कर दे तब ?

विश्वनाथ: फिर जाने दो। मैं नीचे आंगन में सो जाया करूँगा। कमरे में भला क्या सोया जायगा। मैं कभी–कभी सोचता हूँ यदि कोई अतिथि आ जावे, तो क्या होगा ?

रेवती : ईश्वर करे इन दिनों कोई मेहमान न आये। मैं तो वैसे ही गरमी के मारे मर रही हूँ। पिछले पन्द्रह दिन से दर्द के मारे सिर फट रहा है। मैं ही जानती हूँ जैसे रोटी बनाती हूँ।

विश्वनाथ: सारे शहर में जैसे आग बरस रही हो। यहाँ की गरमी से तो ईश्वर बचाये। इसलिये यहाँ के गरमियों में सभी सम्पन्न लोग पहाड़ों पर चले जाते हैं।

रेवती : चले जाते होंगे। गरीबों की तो मौत है।

[रेवती जाती है। बच्चा गरमी से घबरा उठता है। विश्वनाथ जोर–जोर से पंखा करता है]

विश्वनाथ: इन सुकुमार बालकों का क्या अपराध है ? इन्होंने क्या बिगाड़ा है ? तमाम शरीर मारे गरमी के उबल उठा है।

[रेवती पानी का गिलास लेकर आती है]

रेवती : बड़े का तो अभी तक बुरा हाल है। अब भी कभी–कभी देह गरम हो जाती है।

विश्वनाथ: **(पानी पीकर)** उसने क्या कम बीमारी भोगी है– पूरे तीन महीने तो पड़ा रहा। वह तो कहो मैंने उसे शिमला भेज दिया। नहीं तो न जाने...... ।

रेवती : भगवान ने रक्षा की। देखा नहीं; सामने वाली की लड़की को फिर से टाइफाइड हो गया और वह चल बसी। तुम कुछ दिनों की छुट्टी क्यों नहीं ले लेते। मुझे डर है, कहीं कोई बीमार न पड़ जाय !

विश्वनाथ: छुट्टी कोई दे तब न। छुट्टी ले भी लूँ तो खर्च चाहिये। खैर तुम आज जा कर ऊपर सो जाओ ! मैं आँगन में खाट डाल कर पड़ा रहूँगा। बच्चे को ले जाओ। यह गरमी में भुन रहा है।

रेवती : यह नहीं हो सकता। मैं नीचे सो जाऊँगी। तुम छत पर जाकर सो जाओ। और ऊपर भी क्या हवा है ! चारों तरफ दीवारें तप रही हैं। तुम्हीं जाओ ऊपर।

विश्वनाथ: यही तो तुम्हारी बुरी आदत है। किसी का कहना न मानोगी, बस अपनी ही हाँके जाओगी। पन्द्रह दिन से सिर में दर्द हो रहा है। मैं कहता हूँ खुली हवा में सो जाओगी तो तबीयत ठीक हो जायेगी।

रेवती : तुम तो व्यर्थ की जिद्द करते हो। भला यहाँ आँगन में तुम्हें नींद आयगी? बन्द मकान, हवा का नाम नहीं। रात भर नींद न आयगी। सवेरे काम पर जाना है। जाओ। मेरा क्या है, पड़ी रहूँगी।

विश्वनाथ: नहीं, यह नहीं हो सकता। आज तो तुम्हें ऊपर सोना पड़ेगा। वैसे भी मुझे कुछ काम करना है।

रेवती : ऐसी गरमी में क्या काम करोगे ? तुम्हें भी न जाने क्या धुन सवार हो जाती है। जाओ, सो जाओ। मैं आँगन में खाट पर इसे लेकर जैसे–तैसे रात काट लूंगी। जाओ।

विश्वनाथ: अच्छा तुम जानो। मैं तो तुम्हारी भलाई के लिए कह रहा था। मैं ही ऊपर जाता हूँ।

[बाहर से कोई दरवाजा खटखटाता है।]

रेवती : कौन होगा ?

विश्वनाथ: न जाने। देखता हूँ।

रेवती : हे भगवान, कोई मुसीबत न आ जाय।

[बच्चे को पंखा करती है बच्चा गरमी के मारे घबरा कर उठ बैठता है, और पानी माँगता है। वह बच्चे को पानी पिलाती है, पंखा करती है। इसी समय दो व्यक्तियों के साथ विश्वनाथ प्रवेश करता है। रेवती बच्चों को लेकर आँगन में चली जाती है। आगन्तुक एक साधारण बिस्तर तथा एक सन्दूक लेकर कमरे में प्रवेश करते हैं। विश्वनाथ भी पीछे–पीछे आता है। कमीजों के ऊपर काली बंडी,

सिर पर सफेद पगड़ियाँ, बड़े की अवस्था पैंतीस और छोटे की चौबीस है। रंग साँवला बड़े की मूँछे मुंह को घेरे हुए, माथे पर सिलवट। छोटे की अधकटी मूंछे, लम्बा मुख और बड़े–बड़े दांत। दोनों मैली धोतियां पहने हैं। बड़े का नाम नन्हेमल और छोटे का बाबूलाल है। इस हबड़–तगड़ में दोनों बच्चे ऊपर से उतर आते हैं, और दरवाजे के पास खड़े होकर आगन्तुकों को देखते हैं]

विश्वनाथ: **(बड़े लड़के से)** प्रमोद, जरा कुरसी इधर खिसका दो, **(दूसरे अतिथि से)** आप इधर खाट पर आ जाइये ! जरा पंखा तेज कर देना, किरण !

[किरण पंखा तेज करता है, किन्तु पंखा वैसे ही चलता है।]

नन्हेमल : (पगड़ी के पल्ले से मुँह का पसीना पोंछ कर उसी से हवा करता हुआ) बड़ी गरमी है। क्या कहें, पंडित जी, पैदल चले आ रहे हैं। कपड़े तो ऐसे हो गये हैं कि निचोड़ लूँ।

विश्वनाथ: जी, आप लोग............

बाबूलाल : चाचा, मेरे कपड़े निचोड़ कर देख लो, एक लोटे से कम पसीना नहीं निकलेगा। धोती ऐसी चर्रा रही है, जैसे पुरानी हो। पिछले दिनों नकद नौ रुपये खर्च करके खरीदी थी।

नन्हेमल : मोतीराम की दूकान से ली होगी। बड़ा मक्कार है। मैंने भी कुरतों के लिए छः गज मलमल मोल ली थी, सवा रुपये गज दी, जब कि नत्थामल के यहाँ साढ़े नौ आने गज बिक रही थी। पण्डित जी, गला सूखा जा रहा है। स्टेशन पर पानी भी नहीं मिला, मन करता है लेमन की पाँच छः बोतलें पी जाऊँ।

बाबूलाल : मुझे कोई पिलाकर देखे, दस से कम नहीं पीऊँगा, **(बच्चों की ओर देख कर)** क्या नाम है तुम्हारा, भाई ?

प्रमोद : प्रमोद।

किरण : किरण।

बाबूलाल : ठंडा–ठंडा पानी पिलाओ दोस्त, प्राण सूखे जा रहे हैं।

विश्वनाथ: देखो, प्रमोद कहीं से बरफ मिले तो ले आओ, आप लोग ....

नन्हेमल : अपना लोटा कहाँ रखा है ? थैले में ही है न ?

बाबूलाल : बिस्तर में होगा, चाचा, निकाल लूं क्या ? और तो और बिस्तर भी पसीने से भीग गया, चाचा ! मैं तो पहले नहाऊंगा फिर जो होगा देखा जायगा, हाँ नहीं तो। मुझे नहीं मालूम था यहाँ इतनी गरमी है।

नन्हेमल : देखते जाओ। हाँ साहब।

विश्वनाथ: क्षमा कीजियेगा, आप कहाँ से पधारे हैं ?

नन्हेमल : अरे, आप नहीं जानते ! वह लाला संपत राम हैं न गोटेवाले, वह मेरे चचेरे भाई हैं, क्या बताएँ साहब, उन बेचारों का कारबार सब चौपट हो गया, हम लोगों के देखते–देखते वह लाखों के आदमी खाक में मिल गये। बाबू, लो यह मेरी बंडी संदूक में रख दो !

विश्वनाथ: कौन संपत राम ?

बाबूलाल : अरे, वही गोटेवाले। लाओ न, चाचा **(संदूक खोल कर बंडी रखते हुए)** माल–मसाला तो अंटी में है न ?

नन्हेमल : नहीं, जेब में है, बंडी की जेब में अब डर की क्या बात है ! घर ही तो है। जरा बीड़ी का बंडल तो मेरी जेब से निकाल।

बाबूलाल : बीड़ी तो मेरे पास भी है, लो, जरा भाई, दियासलाई ले आना।

किरण : अभी लाया !

[जाता है और लौट कर दियासलाई देता है। दोनों बीड़ी पीते हैं।]

विश्वनाथ: मैं संपत राम को नहीं जानता।

नन्हेमल : संपत राम को जानने की........क्यों ....वह तो आप से मिले हैं आपकी तो वह..........

बाबूलाल : हाँ, उन्होंने कई बार मुझसे कहा है। आपकी तो वह बहुत तारीफ करते हैं। पंडित जी, क्या मकान इतना ही बड़ा है ?

नन्हेमल : देख नहीं रहे, इसके भी पीछे एक कमरा दिखाई देता है। पंडित जी, इसके पीछे आँगन होगा और ऊपर छत होगी ? शहर में तो ऐसे ही मकान होते हैं।

किरण : **(विश्वनाथ से)** माँ पूछती हैं खाना.............

नन्हेमल : क्यों बाबूलाल ? पंडित जी, कष्ट तो होगा, पर तुम जानो खाना तो...

बाबूलाल : बस, एक साग और पूरी।

नन्हेमल : वैसे तो मैं पराँठे भी खा लेता हूँ।

बाबूलाल : अरे, खाने की भली चलाई, पेट ही तो भरना है। शहर में आये हैं, तो किसी को तकलीफ थोड़े ही देंगे, देखिये पंडित जी, जिसमें आपको आराम हो, हम तो रोटी भी खा लेंगे। कल फिर देखी जायगी।

नन्हेमल : भूख कब तक नहीं लगेगी; सारा दिन तो हो गया।

बाबूलाल : नहाने का प्रबन्ध तो होगा, पंडित जी ?

[प्रमोद बरफ का पानी लाता है।]

नन्हेमल : हाँ, भैया, ला तो जरा मैं तो डेढ़ लोटा पानी पीऊँगा।

बाबूलाल : उतना ही मैं भी।

[दोनों गटगट पानी पीते हैं।]

किरण : **(विश्वनाथ से धीरे से)** फिर खाना ?

विश्वनाथ: **(इशारे में)** ठहर जा जरा।

नन्हेमल : **(पानी पी कर)** आह ! अब जान में जान आई। सचमुच गरमी में पानी ही तो जान है।

बाबूलाल : पानी भी खूब ठंडा है, वाह भैया, खुश रहो।

नन्हेमल : कितने सीधे लड़के हैं।

बाबूलाल : शहर के हैं न !

विश्वनाथ: क्षमा कीजिये, मैंने आपको............

दोनों : अरे पंडित जी, आप कैसी बातें करते हैं ? हम तो आप के पास के हैं।

विश्वनाथ: आप कहाँ से आये हैं ?

नन्हेमल : बिजनौर से।

विश्वनाथ: **(आश्चर्य से)** बिजनौर से ! बिजनौर में तो ....मैं बिजनौर गया हूँ, किन्तु.........

नन्हेमल : मैं जरा नहाना चाहता हूँ।

बाबूलाल : मैं भी स्नान करूँगा।

विश्वनाथ: पानी तो नल में शायद ही हो, फिर भी देख लो। प्रमोद, इन्हें नीचे नल पर ले जाओ।

बाबूलाल : तब तक खाना भी तैयार हो जायगा।

[दोनों बाहर निकल जाते हैं, रेवती का प्रवेश]

रेवती : ये लोग कौन हैं ? जान–पहचान के तो मालूम नहीं पड़ते।

विश्वनाथ: न जाने कौन हैं।

रेवती : पूछ लो न ?

विश्वनाथ: क्या पूछ लूं ? दो–तीन बार पूछा ठीक–ठीक उत्तर ही नहीं देते।

रेवती : मेरा तो दर्द के मारे सिर फटा जा रहा है, इधर पिछली शिकायत फिर बढ़ती जा रही है, पहले सोते–सोते हाथ–पैर सुन्न हो जाते थे, अब बैठे ही बैठे सो जाते हैं।

विश्वनाथ: क्या बताऊँ जीवन में तुम्हें कोई सुख न दे सका। नौकर भी नहीं टिकता है।

रेवती : पानी जो तीन मंजिल ऊपर चढ़ाना पड़ता है, इसीलिये भाग जाते हैं, और गरमी क्या कम है ! किसी को क्या जरूरत

पड़ी है जो गरमी में भुने। यह तो हमारा ही भाग्य है कि चने की तरह भाड़ में भुनते रहते हैं।

विश्वनाथ: क्या किया जाय ?

रेवती : फ़िर क्या ख़ाना बनाना ही होगा ! पर ये हैं कौन ?

विश्वनाथ: खाना तो बनाना ही पड़ेगा, कोई भी हो, जब आये हैं तो खाना जरूर खायेंगे, थोड़ा–सा बना लो ?

रेवती : **(तुनक कर)** खानां तो खिलाना ही होगा–तुम भी खूब हो ! भला इस तरह कैसे क़ाम चलेगा ? दर्द के मारे सिर फटा जा रहा है, फिर खाना बनाना इनके लिये और इस समय ? आखिर ये आये क़हाँ से हैं ?

विश्वनाथ: कहते हैं बिजनौर से आये हैं।

रेवती : **(आश्चर्य से)** बिजनौर ! क्या बिजनौर में तुम्हारी जान–पहचान है ? अपनी बिरादरी का तो कोई आदमी वहाँ रहता नहीं है ?

विश्वनाथ: बहुत दिन हुए एक़ बार काम से बिजनौर गया था, पर तब से अब तो बीस साल हो गये हैं।

रेवती : सोच लो, शायद वहाँ कोई साहित्यिक मित्र हो, उसी ने इन्हें भेज़ा हो।

विश्वनाथ: ध्यान तो नहीं आता, फिर भी कदाचित् कोई मुझे जानता हो और उसी ने भेजा हो, किसी संपत राम का नाम बता रहे थे, मैं जानता भी नहीं।

रेवती : बड़ी मुश्किल हैं, मैं खाना नहीं बनाऊँगी, पहले आत्मा फ़िर परमात्मा; जब शरीर ही ठीक नहीं रहता तो फिर और क्या करूँ।

विश्वनाथ: क्या कहेंगे कि रात भर भूखा मारा, बाजार से कुछ मँगा दो न !

रेवती : बाजार से क्या मुफ्त में आ जायगा ? तीन–चार रुपये से कम में क्या इनका पेट भरेगा, पहले तुम पूछ लो, मैं बाद में खाना बनाऊँगी।

[बाबूलाल का प्रवेश, रेवती का दूसरी ओर जाना]

बाबूलाल : तबीयत अब शान्त हुई है, फिर भी पसीने से नहा गया हूँ। न जाने पण्डित जी, आप यहाँ कैसे रहते हैं! **(पंखा करता है)**

विश्वनाथ : आठ–नौ लाख आदमी इस शहर में रहते हैं, और छः–सात लाख आदमी इसी तरह के मकानों में रहते हैं।

[ऊपर छत पर शोर मचता है]

क्या बात है ? कैसा झगड़ा है प्रमोद ?

प्रमोद : (आकर) उन्होंने दूसरी छत पर हाथ धो लिए, पानी फैल गया, इसीलिए वह पड़ोसी की स्त्री चिल्ला रही है। मैंने कहा, 'सबेरे' साफ करा देंगे, इन्हें मालूम नहीं था।

विश्वनाथ : तुमने क्यों नहीं बताया कि हाथ दूसरी जगह धोओ !

प्रमोद : मैं पानी पीने अपनी छत पर चला गया था। वहाँ ऊषा रोने लगी। उसे चुप कराया, पानी पिलाया और पंखा करता रहा।

विश्वनाथ : चलो कोई बात नहीं। उनसे कह दो कि सबेरे साफ करा देंगे।

[नेपथ्य में – 'अरे बाबू, मेरी धोती देना। मैं भी नहा लूँ।]

बाबूलाल : लाया चाचा। **(जाता है)**

[पड़ोसी का तेजी से प्रवेश]

पड़ोसी : देखिये साहब, मेहमान आप के होंगे, मेरे नहीं। मैं यह नहीं बर्दाशत कर सकता कि मेरी छत पर इस तरह गन्दा पानी फैलाया जाय। सारी छत गन्दी कर दी।

विश्वनाथ : वाकई गलती हो गई। कल सबेरे साफ करा दूँगा।

पड़ोसी : आप से रोज ही गलती होती है।

विश्वनाथ : अनजान आदमी से गलती हो ही जाती है। उसे क्षमा कर देना चाहिये। कल से ऐसा नहीं होगा।

पड़ोसी : होगा क्यों नहीं, रोज होगा। रोज होता है। अभी उसी दिन आपके एक और मेहमान ने पानी फैला दिया था। फिर हमारी खाट बिछा कर लेट गया था।

विश्वनाथ: मैंने समझा तो दिया था। फिर तो वह आदमी खाट पर नहीं लेटा था।

पड़ोसी : तो आप के यहाँ इतने मेहमान आते ही क्यों हैं ? यदि मेहमान बुलाने हों, तो बड़ा सा मकान लो।

विश्वनाथ: यह भी आपने खूब कहा कि इतने मेहमान क्यों आते हैं ! अरे भाई मेहमानों को क्या मैं बुलाता हूँ ? खैर, आज क्षमा करें, अब आगे ऐसा नहीं होगा।

पड़ोसी : कहाँ तक कोई क्षमा करे। क्षमा, क्षमा ! बस एक ही बात याद कर ली है क्षमा !

[चला जाता है, दोनों अतिथि आते हैं]

दोनों : क्या बात है ?

विश्वनाथ: कुछ नहीं, आप धोतियाँ छज्जे पर सुखा दें।

नन्हेलाल: ले बाबू डाल तो दे, और ला, बीड़ी निकाल।

बाबूलाल : मेरी जेब से ले लो। **(चला जाता है।)**

नन्हेमल : सचमुच हमारी वजह से आप को बड़ा कष्ट हुआ। **(बैठ कर बीड़ी सुलगाता है)** भैया, जरा, जरा–सा पानी और पिला दो। उफ, बड़ी गरमी है। हाँ साहब, खाने में क्या देर–दार है ? बात यह है कि नींद बड़े जोर से आ रही है।

विश्वनाथ: देखिये, मैं आपसे एक–दो बातें पूछना चाहता हूँ।

दोनों : हाँ, हाँ, पूछिये, मालूम होता है आपने हमें पहचाना नहीं है।

विश्वनाथ: जी हाँ, बात यह है कि मैं बिजनौर गया तो अवश्य हूँ, पर बहुत दिन हो गये हैं।

नन्हेमल : तो क्या हर्ज हैं, कभी–कभी ऐसा भी हो जाता है। हम तो आपको जानते हैं। कई बार आप को देखा भी है।

बाबूलाल : लाला भानामल की लड़की की शादी में आप नजीबाबाद गये थे।

नन्हेमल : अरे दूर क्यों जाते हो। अभी पिछले साल आप मुरादाबाद गये थे।

विश्वनाथ: हाँ, पिछले साल मैं लखनऊ जाते हुए दो दिन के लिये जगदीश प्रसाद के पास मुरादाबाद ठहरा था।

नन्हेमल : हाँ, सेठ जगदीश प्रसाद के यहाँ हमने आपको देखा था।

बाबूलाल : उनकी आटे की मिल है, क्या कहने हैं उनके। बड़े आदमी हैं। हम उन्हीं के रिश्तेदार हैं।

विश्वनाथ: पर उनका तो प्रेस है।

नन्हेमल : प्रेस भी होगा। उनकी एक मिल भी है। अब एक और गन्ने की मिल बिजनौर में खुल रही है।

बाबूलाल : अगले महीने तक खुल जायेगी। हाँ भैया, पानी ले आये, लो चाचा, पहले तुम पी लो।

विश्वनाथ: तो आप कोई चिट्ठी–विट्ठी लाये हैं ?

दोनों : **(सकपका कर)** चिट्ठी, विट्ठी तो नहीं लाये हैं।

नन्हेमल : संपत राम ने कहा था कि स्टेशन से उतर कर सीधे रेलवे रोड चले जाना। वहाँ कृष्णा गली में वह रहते हैं।

विश्वनाथ: पर कृष्णा गली तो यहाँ छः हैं। कौन–सी गली में बताया था !

नन्हेमल : छः हैं ! बहुत बड़ा शहर है साहब ! हमें तो यह मालूम नहीं है, शायद बताया हो। याद ही नहीं रहा।

विश्वनाथ: **(खीजकर)** जिसके यहाँ आपको जाना है, उसका नाम भी बताया होगा?

बाबूलाल : क्या नाम था चाचा ?

नन्हेमल : नाम तो याद नहीं आता। जरा ठहरिये, सोच लूँ।

बाबूलाल : अरे चाचा, कविराज या कवि बताया था। मैं उस समय नहीं था। सामान लेने घर गया था। तुम्हीं ने रेल में बताया था।

नन्हेमल : हाँ, साहब, कविराज बताया था। आप तो बेकार शक में पड़े हैं। हम कोई चोर थोड़े ही हैं।

बाबूलाल : चोर छिपे थोड़े ही रहते हैं। पण्डित जी, क्या बतायें, हमारे घर चल कर देख लें, तो पता लगेगा कि हम भी.............

नन्हेमल : चुप, एक बीड़ी और निकाल बाबू।

बाबूलाल : यह लो !

विश्वनाथ: लेकिन मैं कविराज तो नहीं हूँ ?

दोनों : **(चिल्लाकर)** तो कवि ही बताया होगा, साहब।

नन्हेमल : हमें याद नहीं रहा। हमें तो जो पता दिया था उसी के सहारे आ गये। नीचे आवाज लगाई और आप मिल गये ऊपर चढ़ गये। पहले हमने सोचा होटल या धर्मशाला में ठहर जायँ। फिर सोचा घर के ही तो हैं। चलो घर ही चलें।

विश्वनाथ: जिनके यहाँ आपको जाना था, वह काम क्या करते हैं ?

नन्हेमल : काम ? क्या काम बताया था बाबू ?

बाबूलाल : मेरे सामने तो कोई बात ही नहीं हुई। मैं तो सामान लेने चला गया था। आप तो पण्डित जी, शायद वैद्य हैं ?

नन्हेमल : हाँ, याद आया। बताया था वैद्य हैं।

विश्वनाथ: पर मैं तो वैद्य नहीं हूँ।

प्रमोद : पिछली गली में एक कविराज वैद्य रहते हैं।

विश्वनाथ: हाँ, हाँ, ठीक, कहीं आप कविराज रामलाल वैद्य के यहाँ तो नहीं आये हैं।

दोनों : **(उछलकर)** अरे हाँ, वही तो कविराज रामलाल।

विश्वनाथ: शायद वह इधर के हैं भी।

नन्हेमल : ठीक है, साहब, ठीक है, वही हैं, मैं भी सोच रहा था कि आप न संपत राम को जानते हैं, न जगदीश प्रसाद को **(प्रमोद से)** कहाँ है उन कविराज का घर?

विश्वनाथ: जाओ, इन्हें उनका मकान बता दो। मैं भीतर हो आऊँ।

दोनों : चलो, जल्दी चलो भैया, अच्छा साहब, राम–राम !

विश्वनाथ: **(भीतर से ही)** राम–राम !

[सब चले जाते हैं। कुछ देर बाद विश्वनाथ का पत्नी सहित प्रवेश]

रेवती : अब जान में जान आई। हाय सिर फटा जा रहा है।

[नीचे से आवाज आती है]

[नेपथ्य में– 'भले आदमी, न जाने कहाँ मकान लिया है– ढूँढ़ते–ढूँढ़ते आधी रात होने आयी है।]

रेवती : फिर, फिर अर **(प्रसन्न होकर)** अरे भैया हैं ! आओ–आओ, तुमने तो खबर भी न दी।

आगन्तुक : रेवती **(दोनों मिलते हैं। विश्वनाथ से)** पिछले चार घण्टे से बराबर मकान खोज रहा हूँ। क्या मेरा तार नहीं मिला ?

विश्वनाथ : नहीं तो, कब तार दिया था ?

आगन्तुक : कल ही तो झाँसी से दिया था। सोचता था कि ठीक समय पर मिल जायगा। ओह बड़ी परेशानी हुई।

रेवती : लो, कपड़े उतार डालो। पंखा करती हूँ। अरे प्रमोद, जा जल्दी से बरफ तो ला। मामा जी को ठन्डा पानी पिला। और देख नुक्कड़ पर हलवाई की दूकान खुली हो तो..........

आगन्तुक : भाई, बहुत बड़ा शहर है। वह तो कहो, मैं भी ढूंढ़ कर ही रहा, नहीं तो न जाने कहाँ होटल या धर्मशाला में रहना पड़ता बड़ी गरमी है। मैं जरा बाथरूम जाना चाहता हूँ।

विश्वनाथ : हाँ–हाँ अवश्य सामने चले जाइये।

आगन्तुक : एक बार तो जी में आया कि सामने होटल में ठहर जाऊँ। शायद रात को आप लोगों को कोई कष्ट हो।

रेवती : ऐसा क्यों सोचते हैं आप ! कष्ट काहे का ! यह तो हम लोगों का कर्तव्य था। अच्छा तुम तैयार हो, मैं खाना बनाती हूँ !

आगन्तुक : भई, देखो, इस समय खाना–वाना रहने दो। मैं पानी पीकर सो जाऊँगा। वैसे मुझे भूख भी नहीं है।

रेवती : **(जाती हुई लौटकर)** कैसी बात करते हो भैया ! मैं अभी खाना बनाती हूँ!

आगन्तुक : इतनी गरमी में; रहने दो न !

विश्वनाथ: तुम बाथरूम तो जाओ ! **(आगन्तुक जाता है। रेवती से)** कहो, अब?

रेवती : अब क्या मैं खाना बनाऊँगी। भैया भूखे नहीं सो सकते।

विश्वनाथ: **(हँस कर)** हाँ, ऐसा न हुआ तो कदाचित् और........सिर का दर्द...

रेवती : यहाँ कर्तव्य के साथ प्रेम है।

विश्वनाथ: दिखावा भी।

रेवती : वह भी, किन्तु अपनत्व तो है। तुम मिठाई मँगवाओ, मैं पूरियाँ तले देती हूँ। **(छत की तरफ)** सन्तोष ! सन्तोष, उठ तो सही। देख मामा जी आये हैं। जल्दी आ। **(गाती है)** 'आज मेरे घर आये भैया।'

[पर्दा गिरता है।]

❑❑❑

प्रकाशक :
प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ